भगवान् कृष्ण
और उनका
गीता-उपदेश
स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती

भगवान् कृष्ण

और उनका

गीता-उपदेश

स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती

विजयकुमार गोविन्दराम हासानन्द

प्रकाशक : विजयकुमार गोविन्दराम हासानन्द
4408, नई सड़क, दिल्ली-110 006
दूरभाष : 23977216, 65360255
e-mail : ajayarya16@gmail.com
Website : www.vedicbooks.com
वैदिक-ज्ञान-प्रकाश का गरिमापूर्ण 92वाँ वर्ष (1925-2017)

संस्करण : 2017

मूल्य : ₹ 25.00

मुद्रक : नवशक्ति प्रिंटर्स, दिल्ली-110 032

BHAGWAN KRISHNA AUR UNKA GEETA-UPDESH
by Swami Jagdishwaranand Saraswati

दो शब्द

मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम और योगेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण भारतीय संस्कृति के दो देदीप्यमान नक्षत्र हैं। इनके जीवन से भारतीय और पाश्चात्य अनगिनत लोगों ने प्रेरणा प्राप्त की है और भविष्य में भी करते रहेंगे।

जैसे मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम ने आदर्श पुत्र, आदर्श भाई, आदर्श पति, आदर्श राजा, आदर्श मित्र के रूप में मर्यादाएँ स्थापित की थीं, वैसे ही श्रीकृष्ण भी आदर्श पुत्र, आदर्श मित्र, सन्ध्या-यज्ञादि दैनिक यज्ञों के अनुष्ठाता, वेद-वेदाङ्ग के तत्त्वज्ञ, वीरता के पुञ्ज, राजनीति के धुरन्धर विद्वान् थे, परन्तु श्रीकृष्ण के भक्तों ने उनपर अनेक लाञ्छन लगाये हैं।

अपने आपको कृष्णभक्त कहलानेवालों ने उनपर माखन चुराने, गोपियों के वस्त्रों का अपहरण करने, आचार्य द्रोण, जयद्रथ, कर्ण, दुर्योधन आदि को छल से मरवा डालना—आदि के अनेक दोष लगाये हैं। जब प्रात:काल सनातनधर्म मन्दिरों में "राधारमण हरि गोविन्द जय-जय" की ध्वनि सुनाई देती है तो हृदय में अति वेदना होती है। श्रीकृष्ण को 'राधारमण' कहना उनकी भक्ति है, या उन्हें गाली-प्रदान करना है।

हमने अपने महापुरुषों पर स्वयं दोषारोपण करके उन्हें लाञ्छित किया है। एक ओर उन्हें अवतार कहना, भगवान् मानना और दूसरी ओर उन्हें लाञ्छित करना! हा कष्टम्! खेद! महान् खेद। पौराणिकों ने वेदों और व्याकरण के महाविद्वान् बाल ब्रह्मचारी, वीरवर हनुमान् को बन्दर बना दिया। उनके मुख को विकृत कर दिया और पूँछ

लगाकर पशु बना दिया।

श्रीकृष्ण ऐसे महामानव थे जिनपर कोई भी राष्ट्र और जाति गर्व कर सकती है। इस लघु पुस्तिका में श्रीकृष्ण के उज्ज्वल एवं उदात्तस्वरूप का विवेचन किया गया है। वे चक्रधारी थे, गदाधर तथा असिधर थे, सदाचारी तो वे इतने उच्चकोटि के थे कि एक सन्तान उत्पन्न करने के लिए पति-पत्नी दोनों ने बारह वर्ष के घोर ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन किया था। क्या ऐसा व्यक्ति गोपियों के वस्त्रहरण कर सकता है अथवा उनके साथ रास-क्रीड़ा रचा सकता है? सर्वथा असम्भव।

इस बार उनके गीता-उपदेश को भी इस पुस्तक के साथ समाविष्ट कर दिया है। गीता-उपदेश में दो महत्त्वपूर्ण स्थलों पर टिप्पणियाँ बढ़ाई गई हैं।

आशा है पाठक इसे पहले से भी अधिक उपयोगी पाएँगे। यदि पौराणिकों ने श्रीकृष्ण के सच्चे स्वरूप को समझकर ग़लत बातों को तिलाञ्जलि दी तो मैं अपने परिश्रम को सफल समझूँगा।

विदुषामनुचरः
—जगदीश्वरानन्द

वेद-मन्दिर
लेखरामनगर, [इब्राहीमपुर],
दिल्ली-११० ०३६
दूरभाष : ७२०२२४९

प्रस्तावना

प्रिय जगदीशचन्द्रजी विद्यार्थी एक उदीयमान मनस्वी युवक हैं। ये निरन्तर स्वाध्याय, प्रचार और लेखन में लगे रहते हैं। प्रिय विद्यार्थीजी ने योगिराज कृष्ण का एक संक्षिप्त जीवन-चरित्र लिखा है, यद्यपि इससे पूर्व श्रीकृष्ण के जीवन-चरित्र बहुत बड़ी संख्या में निकल चुके हैं। वैसे तो महापुरुषों की गुणगरिमा का जितना लेखन, अध्ययन, भाषण और श्रवण होता रहे उतना ही जन-साधारण के कल्याण का हेतु है, फिर भी श्री विद्यार्थीजी की इस पुस्तिका का एक विशेष महत्त्व है, वह यह कि श्रीकृष्ण के जीवन से सम्बन्धित अनेक किंवदन्तियों को उन्होंने यथामति बुद्धि-गम्य बनाने का प्रयत्न किया है। यह बात और है कि उनकी कई स्थापनाओं से कोई पाठक सहमत न हो पाये।

हमारे महापुरुषों में योगिराज श्रीकृष्ण का एक अद्वितीय और अनुपमेय स्थान है। इस शताब्दी के खरे आलोचक महर्षि दयानन्द से प्रशंसा-परक प्रमाण-पत्र पाना बहुत कठिन बात थी, किन्तु ऋषि ने जो विचार श्रीकृष्ण के लिए अपने अमर ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश में लिखे हैं, बस, वही एक सबसे बड़ी कसौटी है, जिससे इस कुन्दन के अनूठेपन का पता लगता है।

श्रीकृष्णजी को अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित करते हुए महर्षि दयानन्द लिखते हैं—

"देखो, श्रीकृष्णचन्द्र का इतिहास महाभारत में अत्युत्तम है। उनका गुण-कर्म-स्वभाव और चरित्र आप्त

पुरुषों के सदृश्य है, जिसमें कोई अधर्म का आचरण श्रीकृष्णजी ने जन्म से मरणपर्यन्त कुछ भी बुरा काम किया हो, ऐसा नहीं लिखा।''

—सत्यार्थप्रकाश, ११वाँ समुल्लास

मैं श्री विद्यार्थीजी को श्रीकृष्ण के जीवन के प्रत्येक भाग को अति संक्षेप, किन्तु मौलिकता को लेकर वर्णन करने पर हार्दिक बधाई देता हूँ और मैं चाहता हूँ कि अभ्युदय और निःश्रेयस दोनों ही मार्गों के पथिक इस छोटे-से स्त्रोत के निर्मल जल से अपनी ज्ञान-पिपासा को शान्त करके कल्याण के भागी बनें।

दीवानहाल, दिल्ली
२६-७-६०

शिवकुमार शास्त्री
विद्याभूषण, दर्शनकेसरी,
काव्य-व्याकरणतीर्थ

भगवान् कृष्ण

द्वापरयुग के अन्त में भारत के भाग्याकाश पर अविद्या एवं अन्धकार की घनघोर घटाएँ छाई हुई थीं। सामाजिक संगठन शिथिल हो चुका था। भारत अनेक छोटे-छोटे राज्यों में विभक्त था। देश में सर्वत्र असन्तोष फैला हुआ था। अत्याचारी राजा साम्राज्यवादी और प्रजा-शोषक थे। कंस ने अपने पिता उग्रसेन को कारागार में डाल रक्खा था। जरासन्ध और शिशुपाल-जैसे अन्यायी राजाओं ने प्रजा को सन्त्रस्त किया हुआ था। विश्व अशान्त था। ऐसे भीषण समय में एक ऐसे शक्ति-सम्पन्न और नीतिज्ञ महापुरुष की आवश्यकता थी, जो इस दुर्दशा में सबका सहायक होकर विश्व को व्यवस्थित कर सके। ऐसे समय में असुरों के उत्पीड़न से भयभीत प्रजा की रक्षा के लिए, दानवता के पञ्जे में फँसकर कराहती हुई मानवता के उद्धार के लिए भाद्रकृष्णाष्टमी बुधवार की घोर निशा में रात्रि के अन्धकार को चीरते हुए, अपने आलोक से दिशाओं को आलोकित करते हुए आनन्दकन्द भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र भारतीय रङ्गमञ्च पर अवतरित हुए।

वंश एवं जन्म

श्रीकृष्ण यदुवंशी थे। श्रीकृष्ण के पिता का नाम वसुदेव और माता का नाम देवकी था। यादवों की राजधानी मथुरा थी। आज से लगभग ५०७२ वर्ष पूर्व हमारे चरित-नायक ने इस देवोपम परिवार को अपने जन्म से सुशोभित किया। पुराणों में इनके जन्म-सम्बन्ध में जो असम्भव घटनाएँ लिखी हुई हैं, महाभारत में उनका लवलेश भी नहीं है।

बाल्यकाल

श्रीकृष्णजी का जन्म मथुरा में हुआ। यादव लोग कंस के अत्याचारों से दुःखी थे। उन्हें अपने धन-जन के अपहरण का सदा ही भय लगा रहता था, अतः बड़े भाई बलराम की भाँति इन्हें भी नन्द-गोप के यहाँ भेज दिया गया। श्रीकृष्ण गोकुल के ग्राम्य वातावरण में पलने लगे और शुक्लपक्ष के चन्द्रमा की भाँति बढ़ने लगे।

यज्ञोपवीत संस्कार

वैदिक धर्म में संस्कारों का बड़ा महत्त्व है। वस्तुतः संस्कारों से ही मानव सच्चा मानव बनता है। वसुदेवजी बड़े विद्वान् थे और वैदिक संस्कारों की महत्ता से पूर्ण परिचित थे। जब श्रीकृष्ण बड़े हुए तो उन्होंने बड़ी धूमधाम से श्रीकृष्ण के यज्ञोपवीत की तैयारी की। महामति वसुदेव ने अपने पुरोहित गर्गाचार्य द्वारा वेदोक्त विधि से बलराम और श्रीकृष्ण दोनों का यज्ञोपवीत संस्कार कराया। श्रीकृष्ण और बलराम द्विजत्व को प्राप्त हुए।

गुरुकुल में

अब श्रीकृष्ण और बलराम को विद्याध्ययन के लिए गुरुकुल में भेजा गया और वह भी गोकुल ही के पास। यहाँ उन्होंने विधिपूर्वक शास्त्रों का अध्ययन और मनन किया। उनकी पाठ-विधि में अङ्गोंसहित चारों वेद, धनुर्वेद, स्मृति, मीमांसा और न्यायशास्त्र आदि का वर्णन मिलता है। इसके अतिरिक्त उन्होंने सन्धि, विग्रह, यान, आसन, द्वैध और आश्रय इन छह भेदों से युक्त राजनीति का भी अध्ययन किया। इनके गुरु कौन थे, इस विषय में मतभेद है। महाभारत इस विषय में मौन है। पुराणों में आचार्य सान्दीपनि को इनका गुरु बताया गया है, परन्तु उनके पास

ये केवल ६४ दिन ही रहे और धनुर्वेद ही सीखा। छान्दोग्योपनिषद् में एक कृष्ण देवकी-पुत्र का वर्णन है। उन्होंने घोर आङ्गिरस से शिक्षा प्राप्त की थी। अस्तु।

श्रीकृष्णजी गुरुकुल में पढ़ते थे, परन्तु समीप स्थित ग्राम्य-जीवन में भी भाग लेते रहते थे। उन्होंने अनेक बार गोकुल-वासियों को भीषण आपत्तियों से बचाया था।

एक बार एक साँड पागल हो गया। वह गाँववालों के लिए मूर्त्त यमराज बन गया। उसके सींग अत्यन्त तीक्ष्ण थे, आँखें लाल-लाल और अपने खुरों से पृथिवी को विदीर्ण किये डालता था। उस अति भयानक वृषभ को देखकर ग्वाले 'कृष्ण-कृष्ण' पुकारने लगे। जब श्रीकृष्ण को पता लगा तो वे वहाँ पहुँचे और उसकी ग्रीवा को अपनी बलशाली भुजाओं में पकड़कर गीले वस्त्र की भाँति मरोड़ दिया, फिर उसका एक सींग उखाड़कर उसपर आघात किया, जिससे वह रक्त वमन करता हुआ मर गया। इस बैल का नाम अरिष्टि था।

इसी प्रकार केशी नामक एक लम्बे-लम्बे बालोंवाला घोड़ा यमुना के जङ्गलों में फिरा करता था। वह था तो अत्यन्त हृष्ट-पुष्ट, परन्तु नितान्त वन्य [जङ्गली]। किसी को अपने निकट नहीं आने देता था। आते-जाते व्यक्तियों पर आक्रमण कर देता था। वह खुरों से पृथिवी को फाड़े डालता था। गोपों की प्रार्थना पर श्रीकृष्ण उसे मारने गये, तो वह उनपर भी झपटा। उन्होंने भी उसे निहत्थे ही मार डाला। इसी से उनका नाम केशिसूदन हुआ।

इसी प्रकार अनेक बार गोपों और गोपियों को हिंस्र जन्तुओं से बचाकर श्रीकृष्ण सारे ग्राम के प्यारे और दुलारे हो गये।

गोवर्धन-लीला

ब्रज में प्रतिवर्ष इन्द्र का पूजन होता था। इन्द्र प्रसन्न होकर वर्षा किया करते थे। ब्रजवासियों ने धूमधाम से इन्द्रपूजा की तैयारी की। श्रीकृष्ण ने लोगों को समझाया कि गोप-जीवन का आधार गोवंश और गोवर्धनपर्वत है, अतः इन्द्र की पूजा बन्द होकर उसके स्थान पर गोसंवर्धन-यज्ञ होना चाहिए जिससे गौओं की समृद्धि हो। ऐसा ही हुआ। इन्द्र अपना यह अपमान देख अति कुपित हुए और उसने मेघों को ब्रज पर मूसलधार वर्षा करने की आज्ञा दी। अतिवृष्टि से दुःखी होकर गोप और गोपियाँ अपने पशुओं को लेकर श्रीकृष्ण की शरण में आये। श्रीकृष्णजी ने गोवर्धनपर्वत उठाकर सबको शरण दी और ब्रज की रक्षा की।

यदि श्रीकृष्ण ईश्वर या ईश्वर के अवतार थे और उन्होंने गोवर्धनपर्वत को अपनी अङ्गुली पर उठा लिया तो इसमें उनका कोई महत्त्व नहीं, क्योंकि ईश्वर ने तो अनन्त ब्रह्माण्डों को उठाया हुआ है। वेद में कहा है—त्वमादित्याना वह। (ऋ० १।९४।३) हे प्रभो! आप आदित्यों [सूर्यों] को उठाये फिरते हैं, अतः लोग उनके इस कार्य से कोई प्रेरणा और शिक्षा नहीं ले-सकते। हाँ, श्रीकृष्ण को एक महामानव, एक योगेश्वर मानकर और इस घटना के वास्तविक रहस्य को जानकर उनका यह कार्य मानव-मात्र के लिए अनुकरणीय हो सकता है।

योगिराज श्रीकृष्ण ने इस घटना से राष्ट्रीयता का सन्देश दिया है। उस समय भारतवर्ष में कंस के अत्याचार चरम सीमा पर थे। सभी ब्रजवासी कंस से डरते थे और वे कंस की पूजा कर, उसे प्रसन्न किया करते थे। इन्द्र

शब्द के अनेक अर्थ हैं। ऐश्वर्यवान् होने से राजा को भी इन्द्र कहते हैं। श्रीकृष्ण ने ऐसे अन्यायी और दुराचारी राजा की पूजा से लोगों को रोका और भेंटरूप में कर देने से मना किया। उन्होंने परामर्श दिया कि जिस यज्ञ द्वारा देश के धन-धान्य और गोधन की समृद्धि तथा रक्षा होती है, उस यज्ञ का अनुष्ठान कर देश को उन्नत करना चाहिए।

भगवान् कृष्णचन्द्र स्वयं अपने देश के नेता बने। ब्रजवासियों पर कंस का कोप स्वाभाविक था। कोई भी राजा विद्रोही प्रजा और उसके नेता को सहन नहीं कर सकता। प्रत्येक राजा अपनी साम्राज्यवादी कामना से प्रजा का हर प्रकार दमन करता है। कंस ने भी प्रजा द्वारा पूजन न होते देख अपने सैनिकों को ब्रज पर अत्याचार और दमन की मूसलधार वर्षा करने का आदेश दिया। सर्वत्र त्राहि-त्राहि मच गई। भयभीत बालक और वृद्ध, नर-नारी, युवक और युवतियाँ, गोप और गोपिकाएँ इधर-उधर भागने लगे। कृष्णजी ने सबको धैर्य और आश्वासन दिया। वे तुरन्त रक्षा कार्य में कूद पड़े। उन्होंने अपनी नीतिमत्ता, कार्य-कुशलता, धैर्य और सेवा-भावना से इस घोर विपत्ति-काल में लोगों की रक्षा की। उन्होंने गोवर्धनपर्वत की गुफाओं और कन्दराओं में लोगों के रहने की व्यवस्था कर कंस के सैनिकों से लोहा लिया। बस, यही था उनका गोवर्धनधारण। इसी को लक्ष्य कर कविवर अयोध्यासिंहजी हरिऔध ने कितना सुन्दर कहा है—

लख अपार प्रसार गिरीन्द्र में, ब्रजधराधिप के प्रिय पुत्र का।
सकल लोग लगे कहने उसे, रख लिया अंगुली पर श्याम ने॥

—प्रियप्रवास १२।६७

इस रूप में यह कथा एक सुन्दर सन्देश देती है कि

कोई भी देश अपने एक नेता की आज्ञा में चलकर इसी प्रकार निर्भय हो सकता है।

कंस-वध

श्रीकृष्ण स्नातक हो गये। कृष्णजी के पराक्रम और कीर्त्ति के समाचार जब मथुरा में कंस को मिले तो वह व्याकुल हो गया। पापी का हृदय काँप उठा। खुल्लम-खुल्ला भगवान् कृष्ण पर हाथ डालना बड़ा दुष्कर कार्य था। प्रजा के बिगड़ खड़े होने का भय था। निरुपाय हो छलपूर्वक मरवा डालने का सङ्कल्प किया। कंस ने एक धनुष-यज्ञ का आयोजन किया और अक्रूर को श्रीकृष्ण तथा बलराम को बुलाने के लिए भेजा। श्रीकृष्ण बलराम और बहुत-से गोपों के साथ मथुरा पहुँचे। कंस ने दिखावे के लिए श्रीकृष्ण के मथुरा आगमन के अवसर पर आनन्दोत्सव मनाया।

श्रीकृष्ण धनुष-यज्ञशाला में पहुँचे। उन्होंने धनुष को तोड़ दिया। इसके पश्चात् जब आप कंस के दंगल में प्रविष्ट हुए तो आपके ऊपर एक मदमस्त हाथी छोड़ा गया। श्रीकृष्ण उसे मारकर आगे बढ़े। जरासन्ध की भाँति कंस ने भी अपनी रक्षा के लिए कुछ पहलवान पाल रक्खे थे। चाणूर और मुष्टिक इन दो सुप्रसिद्ध भीमकाय और मल्लविद्या-विशारद पहलवानों को कंस ने पहले ही सिखा रक्खा था कि कृष्ण और बलराम का काम तमाम कर दें। श्रीकृष्ण और बलराम अखाड़े में उतरे। कृष्ण ने चाणूर को और बलराम ने मुष्टिक को एक-दो दावों में ही पछाड़कर उनकी मिट्टी ठिकाने लगा दी। परिणाम कंस की आशा के ठीक विपरीत था। अब क्या था? कंस का पारा पूरा १०४ डिग्री हो गया। कड़ककर आज्ञा दी—''कृष्ण को तुरन्त देश निर्वासित कर दो। वसुदेव को कुत्ते की मौत मार डालो और नन्द को पकड़कर कारागार में डाल दो।'' कंस के मुख से इन शब्दों के निकलते ही कृष्ण कूदकर कंस के सिंहासन तक जा पहुँचे और उसके केश पकड़कर उसे भूमि पर दे पटका। कंस के प्राण-पखेरु उड़ गये। विजयमाला श्रीकृष्ण के गले में पड़ी। कंस की मृत्यु का बदला लेने के लिए कंस का भाई सुनामा कृष्ण पर झपटा, परन्तु बलराम ने उसे भी यमलोक पठा दिया।

मथुरावासियों ने एकमत हो राज्यसिंहासन और मुकुट सँभालने के लिए श्रीकृष्ण से कहा, परन्तु उन्होंने इस प्रस्ताव को स्वीकार नहीं किया। उन्होंने अपने बूढ़े और अत्याचार-पीड़ित नाना उग्रसेन को कारागार से छुड़ाकर राज्यसिंहासन पर बैठाया।

भगवान् कृष्ण की स्नातक होने के पश्चात् यह प्रथम विजय थी, जिसमें उन्हें पूर्ण सफलता मिली। उन्होंने नष्ट हुए सङ्घ की पुनः स्थापना की और यादवों की खोई हुई स्वतन्त्रता पुनः प्राप्त करा दी।

जरासन्ध और कालयवन

मगध (बिहार) का प्रतापी सम्राट् जरासन्ध कंस का श्वसुर था। कृष्ण द्वारा कंस के वध पर उसकी दोनों पत्नियाँ अस्ति और प्राप्ति रोती-बिलखती अपने पिता के पास पहुँची। अपनी विधवा पुत्रियों की यह शोचनीय अवस्था देखकर जरासन्ध ने एक विशाल सेना लेकर मथुरा पर आक्रमण किया। उधर जरासन्ध की असंख्य सेना और इधर इने-गिने यादव, परन्तु भगवान् कृष्ण के नेतृत्व में यादव-सेना ने उसे मारकर भगा दिया। जरासन्ध ने मथुरा पर एक-दो नहीं सत्रह आक्रमण किये, परन्तु हर

बार उसे मुँह की खानी पड़ी।

जब जरासन्ध ने अठारहवीं बार आक्रमण किया तो कृष्ण के समक्ष एक नई विपत्ति आई। कालयवन नामक एक म्लेच्छ राजा ने अपनी सेना से मथुरा को घेर लिया। श्रीकृष्णजी उद्भट राजनीतिज्ञ थे। इस आपत्ति का साम्मुख्य करने के लिए उन्होंने एक नया उपाय खोज डाला। श्रीकृष्णजी युद्ध की वेशभूषा और अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित होकर अकेले ही नगर से बाहर निकल पड़े। जब कालयवन ने देखा कि उनका शत्रु कृष्ण अकेला ही युद्धभूमि में आ रहा है तो वह उनकी ओर झपटा। श्रीकृष्ण भी भाग निकले और एक गुफा में प्रविष्ट हो गये। उस गुफा में मुचुकुन्द नामक एक महापराक्रमी वीर पुरुष विश्राम कर रहा था। कृष्ण ने अपना पीताम्बर उसके ऊपर डाल दिया और एक ओर छिप गये। कालयवन ने उसे कृष्ण समझकर उसके एक लात लगाई। मुचुकुन्द जाग गया और उसने कालयवन को यमलोक पठा दिया।

इस प्रकार कालयवन का वध होने पर भगवान् कृष्ण पुनः मथुरा आये। इस समय जरासन्ध का अठारहवाँ आक्रमण हुआ। इस बार शत्रुसेना बहुत अधिक और अजेय थी। दूरदर्शी श्रीकृष्ण ने सोचा कि इस टिड्डीदल-सेना के साथ युद्ध करना स्वयं ही अपना नाश करना है, अतः उन्होंने समुद्र के तट पर द्वारिकापुरी बसाई और एक सुदृढ़ गढ़ बना सबको वहाँ ले-गये। द्वारिका का दुर्ग यादवों के लिए हर प्रकार अनुकूल था। सुरक्षा की दृष्टि से तो—

स्त्रियोऽपि यस्यां युध्येयुः किमु वृष्णिमहारथाः।

—सभापर्व १४।५१

वह दुर्ग इतना दृढ़ था कि पुरुषों की तो बात ही क्या स्त्रियाँ भी शत्रुओं का सामना कर सकती थीं।

कालयवन और जरासन्ध-जैसे धूर्तों और शठों को इस प्रकार परास्त करना श्रीकृष्ण की कूटनीति के ज्वलन्त उदाहरण हैं। इस प्रकरण से यह भी पता चलता है कि भगवान् कृष्ण व्यर्थ की हत्या और रक्तपात के कितने विरोधी थे।

रुक्मिणी-विवाह

विदर्भ देश के राजा भीष्मक बड़े ही कुलीन और बलशाली थे। उनकी पुत्री थी रुक्मिणी। वह कृष्ण के गुणों पर मुग्ध थी और तन, मन से उन्हें प्रेम करती थी। श्रीकृष्ण भी उसके गुणों पर मुग्ध थे। राजा भीष्मक अपनी पुत्री का विवाह श्रीकृष्ण के साथ करना चाहते थे, परन्तु उनका पुत्र रुक्मी चेदिराज शिशुपाल के साथ रुक्मिणी का विवाह करना चाहता था। अन्त में रुक्मिणी का विवाह शिशुपाल के साथ होना निश्चित हुआ।

अब तो रुक्मिणी बहुत सिटपिटाई। वह तो अपने-आपको कृष्ण के चरणों में समर्पित कर चुकी थी, अतः उसने एक वृद्ध ब्राह्मण के द्वारा अपना प्रणय-निवेदन श्रीकृष्ण की सेवा में द्वारिका भेजा। कृष्ण ने रुक्मिणी की यह प्रार्थना स्वीकार कर ली। विवाह से एक दिन पूर्व वे विदर्भ देश की राजधानी कुण्डनपुर जा पहुँचे और नियत समय पर जब रुक्मिणी भ्रमणार्थ बाहर निकली तो श्रीकृष्ण उसका सङ्केत पाकर उसे रथ पर आरूढ़ कर द्वारिका को प्रस्थानित हुए। शिशुपाल ने कृष्ण पर आक्रमण किया, परन्तु बलराम ने उन्हें मार भगाया। रुक्मी को पता लगा तो उसने भी श्रीकृष्ण का पीछा किया। वह कृष्ण के हाथों

परास्त हुआ और कृष्ण उसे मारना ही चाहते थे, परन्तु रुक्मिणी के कहने पर उसे छोड़ दिया। द्वारिका पहुँचने पर वैदिक-विधि अनुसार श्रीकृष्ण का रुक्मिणी के साथ पाणिग्रहण-संस्कार सम्पन्न हुआ।

विवाह हो गया। पति-पत्नी आनन्दपूर्वक रहने लगे। एक दिन रुक्मिणी ने सन्तान की इच्छा प्रकट की तो कृष्ण और रुक्मिणी ने उत्तम सन्तान की प्राप्ति के लिए कठोर ब्रह्मचर्य का पालन किया। महाभारत का युद्ध आरम्भ होने से पूर्व अश्वत्थामा योगेश्वर कृष्ण के पास गये और श्रीकृष्ण से उनका सुदर्शनचक्र माँगा तो उन्होंने कहा—

ब्रह्मचर्यं महद् घोरं चीर्त्वा द्वादशवार्षिकम्।
हिमवत्पार्श्वमास्थाय यो मया तपसार्जितः॥
समानव्रतचारिण्यां रुक्मिण्यां योऽन्वजायत।
सनत्कुमारस्तेजस्वी प्रद्युम्नो नाम मे सुतः॥

—सौप्तिकपर्व १२। ३०-३१

मैंने १२ वर्ष तक ब्रह्मचर्य का पालन करके हिमालय की कन्दराओं और गिरि-गुहाओं में रहकर बड़ी तपस्या के द्वारा जिसे प्राप्त किया था, मेरे समान व्रत का पालन करनेवाली रुक्मिणी देवी के गर्भ से जिसका जन्म हुआ है, जिसके रूप में साक्षात् तेजस्वी सनत्कुमार ने ही मेरे यहाँ जन्म लिया है, वह प्रद्युम्न मेरा प्रिय पुत्र है। मेरा यह दिव्य चक्र तो कभी उसने भी नहीं माँगा था।

बारह वर्ष की कठोर तपस्या के पश्चात् प्रद्युम्न उत्पन्न हुआ जो रङ्ग-रूप, शील, सदाचार, विद्यादि में कृष्ण के तुल्य ही था। श्रीकृष्ण को इस सन्तान पर इतना गर्व था कि वे उसे 'मे सुतः' कहा करते थे। श्रीकृष्ण कितने

तपस्वी, संयमी एवं सदाचारी थे, यह इस घटना से स्पष्ट है।

क्या ऐसा तपस्वी और सदाचारी व्यक्ति गोपियों के पीछे भाग सकता है? कभी नहीं, सर्वथा असम्भव। श्रीकृष्ण वेदों के प्रकाण्ड पण्डित थे और वेद में लिखा है—

उभे धुरौ वह्निरापिब्दमानोऽन्तर्योनेव चरति द्विजानिः।

—ऋ० १०। १०१। ११

दो धुरों का भार उठानेवाला घोड़ा जैसे हिनहिनाता हुआ भागता फिरता है, दो स्त्रियोंवाले मनुष्य की भी ऐसी ही दुर्दशा होती है।

भगवान् कृष्ण एक आदर्श महामानव और नेता थे। वे जानते थे कि—

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते॥

—गीता ३। २१

श्रेष्ठ पुरुष जैसा आचरण करते हैं, अन्य लोग भी वैसा ही व्यवहार करते हैं, अतः वे ऐसा जघन्य-पाप और अन्याय-आचरण कैसे कर सकते थे।

पुराण-लेखकों ने श्रीकृष्ण के ऊपर बहु-विवाह तथा गोपियों के साथ विषय-भोग करने का दोष-आरोपण किया है। ब्रह्मवैवर्त में बाणासुर के सुख से यहाँ तक कहलाया गया है—

साक्षाज्जारश्च गोपीनां दुष्टः परमलम्पटः।
आगत्य मथुरां कुब्जां जघान मैथुनेन च॥

—कृष्णजन्मखण्ड ११५। ६१-६२

अर्थात् कृष्ण साक्षात् जार, दुष्ट तथा अति लम्पट थे।

आगे का अर्थ अति घृणित है, लेखनी उसे लिखने में असमर्थ है। आगे कहा है कि वृषभानु की पुत्री राधा सुदामा के शाप और अपने पति की आज्ञा से ६० करोड़ गोपियों के साथ गोलोक से भारतवर्ष में आई। कृष्ण अपनी उस पत्नी के साथ विलास करते रहे। गोपाल-सहस्रनाम में कहा गया है—

गोपालः कामिनीजारश्चौरजारशिखामणि।

—श्लोक १३७

अर्थात् कृष्ण चोर और व्यभिचारियों में शिरोमणि थे।

विष्णुपुराण में कहा है—

ता वार्यमाणाः पतिभिः पितृभिर्भ्रातृभिस्तथा।
कृष्णं गोपाङ्गना रात्रौ रमयन्ति रतिप्रियाः ॥

—विष्णुपुराण ५।१३।५९

ब्रह्मवैवर्तादि का यह विषाक्त प्रभाव जयदेव, विद्यापति और चण्डीदास पर भी पड़ा। जयदेव ने तो अपने ग्रन्थ की प्रस्तावना में ही लिखा है कि यदि विलासकला के द्वारा हरिस्मरण करना हो तो जयदेव की सरस्वती गीत-गोविन्द से यह प्रयोजन सिद्ध होगा। सूरदासजी ने भी ब्रह्मवैवर्त के आधार पर राधा के परकीयरूप की कल्पना की। यह बात निम्न उद्धरणों से स्पष्ट है—

नीवी ललित गही यदुराई।
जबहि सरोज धरयो श्रीफल पर तब यशुमति तहं आई॥

सूरदासजी द्वारा चित्रित राधा के प्रथम मिलन का चित्रण देखिए—

बूझत श्याम कौन तू गोरी।
कहाँ रहति काकी तू बेटी, देखी नहीं कबहूँ ब्रज खोरी॥

काहे को हम ब्रजतन आवति, खेलत रहति आपनी पौरी।
सुनत रहति स्त्रवननि नन्दढोटा, करत रहत माखन दधि चोरी।
तुम्हरो कहा चोरि हम लैहैं, खेलन चलो संग मिलि जोरी।
'सूरदास' प्रभु रसिक शिरोमनि, बातन भुरइ राधिका भोरी॥

इन कवियों की चञ्चल लेखनी की करामात देखकर आश्चर्य होता है। इनकी कविताएँ पढ़ने में लज्जा आती है और यह विश्वास नहीं होता कि इन्हें गा-गाकर भक्त लोग हरि-प्रेम में विभोर हो जाते होंगे।

पौराणिकों के अनुसार राधा कृष्ण की पत्नी है। आज राधा के बिना कृष्ण की कल्पना भी नहीं हो सकती, परन्तु स्वयं पुराणों के अनुसार भी राधा कृष्ण की विवाहिता भार्या नहीं है। राधा तो कृष्ण की मामी थी। पाठक पूछेंगे कैसे? लीजिए प्रमाण प्रस्तुत है—

वृषभानोश्च वैश्यस्य सा च कन्या बभूव ह।
सार्द्धं रायणवैश्येन तत्सम्बन्धं चकार सः॥
कृष्णमातुर्यशोदाया रायणस्तत्सहोदरः।
गोलोके गोपकृष्णांशः सम्बन्धात्कृष्णमातुलः॥

—ब्रह्म० प्रकृति० ४९।३५,३७,४०

यह राधा वृषभानु की कन्या थी। उसने राधा का सम्बन्ध रायण वैश्य से कर दिया जो कृष्ण की माता यशोदा का भाई था। वह रायण गोलोक में तो कृष्ण का अंश था, परन्तु सम्बन्ध की दृष्टि से कृष्ण का मामा था।

हे कृष्ण के भक्तो! जब पुराणों के अनुसार राधा कृष्ण की मामी है तो अब तो राधा-कृष्ण कहकर कृष्ण का उपहास मत करो।

महाभारत में भगवान् कृष्ण का जीवन अनेक पहलुओं

से चित्रित हुआ है, परन्तु उसमें कहीं राधा के नाम की गन्ध भी नहीं है। हरिवंशपुराण में कृष्ण के वंश का विस्तृत वर्णन है, उसमें भी राधा की चर्चा नहीं है। भासकवि कृत 'बालचरित नाटक' जिसमें कृष्ण की बाल-लीलाओं का चित्रण है तथा विष्णुपुराण, वायुपुराण जिनमें कृष्ण का चरित्र-चित्रण है, कहीं भी राधा का उल्लेख नहीं है और तो और श्रीमद्भागवत तक में राधा का नाम नहीं है। हाँ, ब्रह्मवैवर्तपुराण में कृष्ण के साथ राधा की चर्चा साधारणतया की गई है, परन्तु पीछे भक्त कवियों ने कृष्ण का जो चरित्र लिखा है, उसमें उन्होंने अपने मन के फफोले फोड़े हैं। यह उनकी कपोल-कल्पना है। उसका ऐतिहासिक महत्त्व नहीं है।

न तो कृष्ण गोपियों से व्यभिचार करते थे और न राधा के साथ उनका कोई अश्लील सम्बन्ध था, न ही उनके १६,००० रानियाँ थीं। १६,००० तो परिचारिकाएँ और दासियाँ थीं। रुक्मिणी, केवलमात्र रुक्मिणी श्रीकृष्ण की धर्मपत्नी थी। वही उनकी गृहलक्ष्मी और हृदयेश्वरी थी।

कृष्ण-पाण्डव परिचय

राजा द्रुपद की पुत्री द्रौपदी के स्वयंवर में देश-विदेश के अनेक राजा उपस्थित हुए। पाण्डव लोग भी ब्राह्मणवेश में वहाँ उपस्थित थे। जब वीर-केसरी अर्जुन ने मत्स्य-वेध कर स्वयंवर की शर्त पूर्ण कर दी तब अन्य राजे-महाराजे बहुत बिगड़े। कारण कि अर्जुन और उसके भाई लाक्षागृह से निकलकर ब्राह्मणों का-सा वेश धारण किये हुए घूमते-फिरते थे, अतः क्षत्रिय शासकमण्डल ने इस बात को अपने लिए भारी अपकीर्तिदायक, अप्रतिष्ठासूचक

और अपमानजनक समझा कि इतने क्षत्रिय महारथियों की उपस्थिति में एक कङ्गाल ब्राह्मण द्रौपदी को ले-जाए। उन्होंने शोर मचाया और लड़ने को तैयार हुए। पाण्डव भी युद्ध के लिए कटिबद्ध थे। सर्वप्रथम कर्ण और अर्जुन युद्ध-भूमि में उतरे। युद्ध में कर्ण परास्त हुआ। उधर भीम पास खड़े किसी वृक्ष को उखाड़ और उसी की गदा बनाकर शल्य से भिड़ गये। श्रीकृष्ण यह सब कौतुक एक ओर खड़े होकर देख रहे थे। क्षात्र-मण्डल को परास्त होते देख वे ताड़ गये कि यह अपूर्व धनुर्धारी अर्जुन है। अब कृष्णजी ने आगे बढ़कर दोनों पक्षों को शान्त किया। उन्होंने कहा कि इस ब्राह्मण ने धर्मानुसार ही द्रौपदी को प्राप्त किया है, अतः इससे वैर-विरोध करना उचित नहीं। कृष्ण की बात को कौन टाल सकता था? द्रौपदी ने वरमाला अर्जुन के गले में डाल दी। पाण्डवों की जननी कुन्ती भगवान् कृष्ण की फूफी लगती थी। इस कारण उस दिन से कृष्ण पाण्डवों के मित्र, सहायक, परामर्शदाता और पथप्रदर्शक बन गये।

युधिष्ठिर का राजसूययज्ञ

पाण्डवों के जीवित होने का समाचार धृतराष्ट्र आदि को भी विदित हुआ। भीष्म और विदुर आदि से परामर्श कर पाण्डवों को हस्तिनापुर बुलाया गया और उन्हें खाण्डवप्रस्थ नामक स्थान दिया गया। पाण्डवों ने जङ्गलों को साफ़ किया और मयदानव नामक शिल्पी ने उनके लिए एक अद्भुत सभागार का निर्माण किया।

एक दिन देवर्षि नारद महाराज युधिष्ठिर के यहाँ पधारे। उस सभागार का निरीक्षण करने के पश्चात् उन्होंने युधिष्ठिर को राजसूय-यज्ञ रचाने का परामर्श दिया।

शुभचिन्तकों और मित्रमण्डली ने इस प्रस्ताव का अनुमोदन किया। युधिष्ठिर ने श्रीकृष्ण को बुलाया और उनकी सलाह ली तो उन्होंने बड़े स्पष्ट शब्दों में कहा—''महान पराक्रमी जरासन्ध को जीते बिना आप कदापि राजसूय-यज्ञ को पूर्ण नहीं कर सकते। जरासन्ध ने ८६ राजाओं को क़ैद किया हुआ है तथा उसकी इच्छा है कि चौदह अन्य शासकों को और बन्दी बनाकर एक भारी यज्ञ रचे अथच उसमें इन सभी राजाओं की बलि चढ़ा दे, अतः आप जरासन्ध को परास्त करके ही सम्राट् बनने के अधिकारी हो सकते हैं।''

श्रीकृष्ण के ये युक्तियुक्त वचन सबके मन भाये। श्रीकृष्ण व्यर्थ की मार-काट और रक्तपात के विरोधी थे। उन्होंने द्वन्द्व युद्ध द्वारा अकेले जरासन्ध को मारने का निश्चय किया और भीम तथा अर्जुन को लेकर मगध की ओर चले। मगध पहुँचकर उन्होंने एक माली से पुष्पमालाएँ छीन लीं। गिरिब्रज के चहुँ ओर पर्वतशृङ्ग थे। उनमें से एक को तोड़कर नगर में प्रविष्ट हुए। वहाँ उन्होंने स्नातकों का वेश धारण कर लिया और सीधे राजमहल में पहुँचकर जरासन्ध से मिले। उस दिन भीम और अर्जुन ने मौन-व्रत धारण किया हुआ था। जरासन्ध ने स्नातकों की भाँति इनका सत्कार किया। श्रीकृष्ण ने इन दोनों का परिचय दिया और बताया कि आधीरात के समय ये अपना मौन तोड़ेंगे तभी वार्त्तालाप हो सकेगा। जरासन्ध ने यज्ञशाला में उनके ठहरने का प्रबन्ध किया और अर्द्धरात्रि को आने का वचन देकर स्वयं राजभवन में चला गया।

अर्द्धरात्रि व्यतीत होने पर जरासन्ध इनसे मिला तो इनके माली से पुष्पमालाएँ छीनने और गिरिब्रज तोड़ने का

वृत्तान्त उसे ज्ञात हो चुका था। इनकी भुजाओं पर धनुष की डोरी चढ़ाने के चिह्न देखकर वह समझ गया कि ये क्षत्रिय हैं। उसने अपनी शङ्का प्रकट करते हुए पूछा—''महानुभावो! यह वेश परिवर्तन क्यों कर रक्खा है? यहाँ आने का क्या प्रयोजन है? सीधे द्वार से न आकर गिरि-शृङ्ग तोड़कर आने का क्या कारण है?''

श्रीकृष्ण ने कहा—''महाराज! ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य तीनों वर्ण स्नातक के नियम से रह सकते हैं। आप हमें क्षत्रिय स्नातक जानें और—

पुष्पवत्सु ध्रुवा श्रीश्च पुष्पवन्तस्ततो वयम्॥

—सभापर्व० २१।५१

पुष्पमाला सौभाग्य का चिह्न है, इसलिए धारण की है। मौनी इसलिए हैं कि—

क्षत्रियो बाहुवीर्यस्तु न तथा वाक्यवीर्यवान्॥

—सभा० २१।५१

क्षत्रिय कर्मवीर होते हैं, वाक्शूर नहीं।

द्वार से न आने का कारण यह है कि आप हमारे शत्रु हैं और नीति के अनुसार—

अद्वारेण रिपोर्गेहं द्वारेण सुहृदो गृहान्॥

—सभा० २१।५३

शत्रु के घर में दीवार तोड़कर जाना चाहिए और मित्र के घर में द्वार से प्रविष्ट होना चाहिए।

इससे हमारे आने के प्रयोजन का अनुमान कर लीजिए।''

जरासन्ध ने पूछा—''मैंने आपका कोई अपराध नहीं किया, फिर मेरी आपकी शत्रुता कैसी?'' श्रीकृष्णजी ने

उत्तर दिया—"तूने अनेक राजाओं को क़ैद किया हुआ है और उनकी बलि देना चाहता है। तू जाति का घातक है और हम उसके रक्षक। मैं कृष्ण हूँ और ये पाण्डव-पुत्र भीम और अर्जुन हैं। हम तुझे ललकारते हैं या तो तू राजाओं को छोड़ दे अन्यथा हममें से किसी के साथ द्वन्द्व युद्ध कर।"

जरासन्ध ने क़ैदियों को छोड़ने से तो इनकार कर दिया, परन्तु भीम से मल्लयुद्ध करने के लिए तैयार हो गया। दूसरे दिन चारों वर्णों के नर-नारी एवं आबाल वृद्धों के एक बड़े समारोह में जरासन्ध और भीम का युद्ध आरम्भ हुआ। यह युगल [जोड़ी] एक-दूसरे पर लात, मुक्कों और घूँसों का प्रहार करते हुए तेरह दिन तक लगातार लड़ती रही। चौदहवें दिन जरासन्ध थककर हटने लगा। श्रीकृष्ण ने इस अवसर पर भीम को सचेत करते हुए कहा कि थका हुआ शत्रु लड़ाई में मारने को कम मिलता है, इसपर मुक्कों का भरसक प्रहार कर। भीम जोर-जोर से मुक्के मारने लगा, परन्तु जरासन्ध का कुछ भी नहीं बिगड़ा। अब कृष्णजी ने भीम को स्मरण कराया कि इसका निचला भाग दुर्बल है। भीमसेन ने यह सुनते ही उसे टाँगों से पकड़कर खींचा और उसके चिरकर दो टुकड़े हो गये। सफलता ने भीमसेन के चरण चूमे। यह है श्रीकृष्ण की नीतिमत्ता का उत्कृष्ट उदाहरण।

श्रीकृष्ण और अर्जुन ने बन्दी राजाओं को मुक्त किया और जरासन्ध के पुत्र सहदेव को राज्यसिंहासन पर अभिषिक्त किया। मुक्त हुए राजाओं ने श्रीकृष्ण की स्तुति की और युधिष्ठिर के राजसूय-यज्ञ में आने का वचन दिया।

अर्घ्यदान और शिशुपाल-वध

जरासन्ध का वध हो गया। इससे ८६ कुलों के प्रमुखों ने तो स्वयं ही युधिष्ठिर को सम्राट् स्वीकार कर लिया। अब युधिष्ठिर के चारों भाई दिग्विजय के लिए निकले। दिग्विजय के पश्चात् राजसूय-यज्ञ की तैयारी होने लगी। सब व्यक्तियों को पृथक्-पृथक् कार्य बाँटे गये। भोजन व्यवस्था का भार दुःशासन को, राजाओं के स्वागत-सत्कार पर संजय को, देख-रेख के लिए भीष्म और द्रोणाचार्य को, स्वर्ण और रत्नादि की रक्षा और दक्षिणा देने पर कृपाचार्य को नियुक्त किया गया। विदुर व्ययकर बने। दुर्योधन उपहार लेने पर नियुक्त हुए। श्रीकृष्ण ने यज्ञशाला के द्वार पर पहरा देने और ब्राह्मणों के चरण धोने का कार्य अपने हाथ में लिया। यह है श्रीकृष्ण की नम्रता!

युधिष्ठिर की दीक्षा हो चुकी। जब अर्घ्य देने का समय आया तो युधिष्ठिर ने भीष्मजी से पूछा कि सबसे पूर्व अर्घ्य किसे दिया जाए। भीष्मजी ने कहा—

"इस विराट् सभा में जहाँ समस्त भारत के सुविख्यात ब्राह्मण, धुरन्धर विद्वान्, वेदों के मर्मज्ञ, युद्धविद्याविशारद, शूरवीर क्षत्रिय, वीर राजा और महाराजा उपस्थित हैं उन सबमें श्रीकृष्ण ही सबसे बढ़कर हैं—

वेदवेदाङ्गविज्ञानं बलं चाप्यधिकं तथा।
नृणां लोके हि कोऽन्योऽस्ति विशिष्टः केशवादृते॥
दानं दाक्ष्यं श्रुतं शौर्यं ह्री कीर्तिर्बुद्धिरुत्तमा।
सन्नतिः श्रीर्धृतिस्तुष्टिः पुष्टिश्च नियताच्युते॥

—सभा० ३८।१९-२०

ये वेद-वेदाङ्गों के तो मर्मज्ञ हैं ही, बलशाली भी

सबसे अधिक हैं। कृष्ण के अतिरिक्त संसार के मनुष्यों में दूसरा कौन सबसे बढ़कर है? दान, दक्षता, शास्त्रज्ञान, शौर्य, लज्जा, कीर्त्ति, उत्तम बुद्धि, विनय, श्री, धृति, तुष्टि और पुष्टि ये सभी सद्‌गुण श्रीकृष्ण में नित्य विद्यमान हैं।

ये सभी राजाओं में अपने तेज, बल और पराक्रम से उसी प्रकार देदीप्यमान हो रहे हैं, जैसे नक्षत्रों में सूर्य, अतः ये ही अर्घ्य के उपयुक्त पात्र हैं।'' धर्मराज युधिष्ठिर की आज्ञा पा सहदेव ने श्रीकृष्ण को अर्घ्य दिया।

चेदिराज शिशुपाल श्रीकृष्ण का यह सम्मान देख आगबगूला हो गया। शिशुपाल बोला—''कृष्ण न ऋत्विज हैं, न आचार्य और न राजा। इनको अर्घ्य देना अन्य राजाओं का अपमान है।'' इतना ही नहीं उसने कृष्ण को गालियाँ देना आरम्भ किया। उन्हें स्त्रीघातक और गोघातक बताया, ग्वाला और पेटू कहा। युधिष्ठिर ने उसे समझाने का बहुत प्रयत्न किया, परन्तु लातों के भूत बातों से कब मानते हैं? शिशुपाल ने आँखें लाल कीं, दाँत पीसे और अन्त में कृष्ण को युद्ध के लिए ललकारा। श्रीकृष्ण अब तक चुप थे, परन्तु युद्ध का आह्वान सुनकर चुप रहना कायरता थी। उन्होंने पहले तो राज्यसभा में उसके कुकृत्यों का भण्डा फोड़ किया और कहा कि फूफी के कहने से अब तक मैं इसके अपराधों को क्षमा करता रहा, परन्तु अब हद हो चुकी है, पाप का घट पूर्ण भर चुका है। यह कह श्रीकृष्ण ने नरेन्द्र मण्डल के देखते-देखते अपने सुदर्शनचक्र द्वारा उसका काम तमाम कर दिया। विजयमाला कृष्ण के गले में पड़ी। यज्ञ समाप्त हो गया तो पाण्डवों की अनुमति पा श्रीकृष्णजी द्वारिकापुरी लौट गये।

पाण्डवों का प्रवास

दुर्योधन की पाण्डवों से बचपन से ही लाग-डाँट थी। राजसूयोत्सव में दूर-दूर के राजाओं के उपहारों को देखकर तथा मय द्वारा रचित अनुपम सभाभवन का अवलोकन कर दुर्योधन के हृदय पर साँप लोटने लगा। वह पाण्डवों की धन-सम्पत्ति हड़प करने और उन्हें नीचा दिखाने के उपाय सोचने लगा। शकुनि ने दुर्योधन को युधिष्ठिर के साथ जूआ खेलने की सम्मति दी। युधिष्ठिर को जूआ खेलने के लिए बुलाया गया। शकुनि ने अपने छल के द्वारा एक-दो दावों में सारा साम्राज्य, फिर चारों भाइयोंसहित युधिष्ठिर और अन्त में द्रौपदी को भी जीत लिया। अब क्या था, एकवस्त्रा द्रौपदी को सभा में लाया गया। दासी और वेश्या कहकर उसे अपमानित किया गया। दुःशासन ने उसका वस्त्र खींचा। महाभारत में इस स्थल पर कृष्ण द्वारा द्रौपदी का चीर बढ़ाने का वर्णन है, परन्तु यह प्रक्षेप है। श्रीकृष्ण को तो इस घटना का पता ही नहीं था। वे तो शाल्व से युद्ध करने गये हुए थे। द्वैत-वन में पाण्डवों से मिलने पर उन्होंने युधिष्ठिर से कहा था—

यद्यहं द्वारिकायां स्यां राजन् संनिहितः पुरा।
आगच्छेयमहं द्यूतमनाहूतोऽपि कौरवैः॥
वारयेयमहं द्यूतं बहून् दोषान् प्रदर्शयन्।

—वनपर्व १३।१-२

अर्थात् यदि मैं द्वारिका में होता तो बिना बुलाये जूए के समय वहाँ पहुँच जाता और जूए के अनेक दोष दिखाकर उसे रोकने का प्रयत्न करता। अस्तु!

धृतराष्ट्र को द्रौपदी के अपमान का पता लगा तो वे

बहुत क्रुद्ध हुए। उन्होंने द्रौपदी को बुलाकर वर माँगने के लिए कहा। द्रौपदी ने पहले वर में युधिष्ठिर और दूसरे में चारों पाण्डवों को दासभाव से मुक्त करा लिया। इस प्रकार दुर्योधन की सारी योजना विफल हो गई। पाण्डव इन्द्रप्रस्थ को जा ही रहे थे कि उन्हें फिर बुलाया गया और पुनः जूआ खेला गया। शर्त यह रही कि जो हारे वही परिवारसहित वनवास को जाए। पाण्डव पुनः पराजित हुए और उन्हें बारह वर्ष के लिए वनवास और एक वर्ष अज्ञातवास के लिए जाना पड़ा।

पाण्डवों का बारह वर्ष का वनवास और एक वर्ष का अज्ञातवास पूरा हो गया तो उन्होंने अपना राज्य वापस माँगा। दुर्योधन ने राज्य वापस नहीं दिया, दोनों ओर से युद्ध की तैयारियाँ होने लगीं।

दूतकर्म

महाभारत का युद्ध आरम्भ होने से पूर्व श्रीकृष्ण पाण्डवों के दूत बनकर दुर्योधन के पास हस्तिनापुर पहुँचे। वहाँ विदुरजी के घर जाकर ठहरे तथा कुन्ती को सान्त्वना और धैर्य प्रदान किया। इसके पश्चात् वे दुर्योधन के यहाँ गये। उनका मधुपर्क तो स्वीकार किया, परन्तु जब दुर्योधन ने भोजन के लिए कहा तब श्रीकृष्णजी ने कहा—

सम्प्रीतिभोज्यान्यन्नानि आपद्भोज्यानि वा पुनः।
न च सम्प्रीयसे राजन् न चैवापद्गता वयम्॥

—उद्योग० ९१। २५

"राजन्! किसी के घर का अन्न दो ही कारणों से खाया जाता है या तो प्रेम के कारण या आपत्ति पड़ने पर। प्रीति तो तुम में नहीं है और सङ्कट में हम नहीं हैं।"

दूसरे दिन श्रीकृष्ण राज्यसभा में पहुँचे। सभा में

पहुँचने पर भीष्म और द्रोणादि सभी कौरव-प्रमुखों ने उठकर उनका स्वागत किया और उन्हें श्रेष्ठ आसन प्रदान किया। उनके स्थान ग्रहण करने पर सभा में सन्नाटा छा गया। इस सन्नाटे को भङ्ग करते हुए धृतराष्ट्र को सम्बोधित कर श्रीकृष्णजी ने कहना आरम्भ किया—

संसार में एक महान् विपत्ति आनेवाली है, जिससे पृथिवी का नाश होगा। यदि आप चाहें तो यह विपत्ति टल सकती है, यह कोई कठिन कार्य नहीं—

त्वय्याधीनः शमो राजन् मयि चैव विशाम्पते।
पुत्रान् स्थापय कौरव्य स्थापयिष्याम्यहं परान्॥

—उद्यो० ९५। १३

कौरव नरेश! इस समय दोनों पक्षों में सन्धि कराना मेरे और आपके अधीन है। आप अपने पुत्रों को मर्यादा में रक्खें और मैं पाण्डवों को नियन्त्रण में रक्खूँगा।

आगे उन्होंने फिर कहा—

शिवेनेमे भूमिपालाः समागम्य परस्परम्।
सह भुक्त्वा च पीत्वा च प्रतियान्तु यथागृहम्॥

—उद्योग० ९५। ३५

आप ऐसा प्रयत्न कीजिए जिससे ये राजा लोग परस्पर मिलकर तथा एकसाथ खा-पीकर कुशलपूर्वक अपने-अपने घरों को लौट जाएँ।

फिर उन्होंने दुर्योधन से कहा—

तुम परमज्ञानी महापुरुषों के कुल में उत्पन्न हुए हो फिर अकुलीनों का-सा व्यवहार क्यों दिखाते हो? युद्ध हुआ तो कुल का नाश होगा, अतः सन्धि कर लो। अपनी कीर्त्ति का नाश कर कुलघाती न बनो।

त्वामेव स्थापयिष्यन्ति यौवराज्ये महारथाः।
महाराज्येऽपि पितरं धृतराष्ट्रं जनेश्वरम्॥
मा तात श्रियमायान्तीमवमंस्थाः समुद्यताम्।
अर्धं प्रदाय पार्थेभ्यो महतीं श्रियमाप्नुहि॥

—उद्यो० १२४।६०-६१

महारथी पाण्डव तुम्हें ही युवराज बनाएँगे और तुम्हारे पिता धृतराष्ट्र को महाराज के पद पर बनाये रक्खेंगे। तात! अपने घर में आने को उद्यत राज्यलक्ष्मी का अपमान मत करो। कुन्ती के पुत्रों को आधा राज्य देकर स्वयं विशाल सम्पत्ति का उपभोग करो।

जो लोग श्रीकृष्णजी पर युद्ध कराने का दोष मढ़ते हैं, वे उपर्युक्त वर्णन को देखें, उन्होंने युद्ध को रोकने का कितना प्रबल उद्योग किया है।

भीष्म, विदुर और द्रोण सबने दुर्योधन को समझाया, परन्तु उसने एक न सुनी और कहा—''पाण्डवों ने जो कष्ट झेले हैं, उसमें मेरा क्या दोष है? गीदड़-भभकियों से भयभीत हो मैं राज्य नहीं लौटा सकता। आधे राज्य की तो बात ही क्या—

यावद्धि तीक्ष्णया सूच्या विध्येदग्रेण केशव।
तावदप्यपरित्याज्यं भूमेर्नः पाण्डवान् प्रति॥

—उद्यो० १२७।२५

हे केशव! जितनी भूमि एक सुई की नोक से छिद सकती है, मैं पाण्डवों को उतनी भूमि देने के लिए भी तैयार नहीं हूँ।''

जब श्रीकृष्णजी ने देखा कि नरमी से काम नहीं निकलता तो उन्होंने कड़ककर कहा—''दुर्योधन! लाक्षागृह

तुमने बनवाया था। भीम को विष तुमने दिया था। जूए का खेल तुमने रचाया, भरी सभा में द्रौपदी का अपमान तुमने किया और फिर भी यही रट लगा रक्खी है कि तुम सर्वथा निर्दोष हो। निश्चय ही तुम्हारी जीवन-लीला समाप्त हो चुकी है। शान्ति अच्छी थी तू उसे ठुकरा रहा है।''

अब दुर्योधन और दुःशासन ने कृष्ण को क़ैद करने की मन्त्रणा की, परन्तु भण्डा फूट गया। धृतराष्ट्र और विदुर ने उसे बहुत लताड़ा और फटकारा। श्रीकृष्णजी ने कहा—''मैं चाहूँ तो अभी इसे बाँधकर पाण्डवों के हवाले कर दूँ, परन्तु मैं दूत हूँ, अधर्म नहीं करूँगा।'' यह कहकर श्रीकृष्णजी सभा से चल दिये।

गीता-उपदेश

श्रीकृष्णजी ने अपनी ओर से शान्ति-स्थापित करने का पूर्ण प्रयत्न किया, परन्तु जब सभी उपाय असफल रहे तो युद्ध की घोषणा हो गई। दोनों सेनाएँ कुरुक्षेत्र के मैदान में डट गईं। दुर्योधन ने भीष्मपितामह को अपना सेनाध्यक्ष बनाया। पाण्डव सेना की बागडोर धृष्टद्युम्न के हाथ में थी। युद्धारम्भ होने से पूर्व अर्जुन ने कृष्ण से कहा कि मेरा रथ दोनों सेनाओं के मध्य में खड़ा करो, जिससे मैं यह देखूँ कि मुझे किनके साथ संग्राम करना है। दोनों सेनाओं के मध्य में पहुँचकर अर्जुन ने देखा—दोनों सेनाओं में इष्टजन और सम्बन्धी, बन्धु-बान्धव, दादा, चाचा-ताऊ, मामा, गुरु और आचार्य खड़े हैं। उसका शरीर काँपने लगा। मस्तक पर पसीने की बूँदें छलकने लगीं। चेहरे पर हवाइयाँ उड़ने लगीं। धनुष हाथ से छूट गया। ''भगवन्! मैं नहीं लड़ूँगा।'' ऐसा कहकर और गाण्डीव छोड़कर वह रथ के जूए पर बैठ गया।

इस समय श्रीकृष्ण ने अर्जुन को जो उपदेश दिया वह भगवद्गीता के नाम से प्रसिद्ध है। श्रीकृष्णजी ने कहा—

कुतस्त्वा कश्मलमिदं विषमे समुपस्थितम्।
अनार्यजुष्टमस्वर्ग्यमकीर्तिकरमर्जुन ॥

—गीता २।२

हे अर्जुन! तुम्हें युद्धस्थल में यह मोह कैसे उत्पन्न हुआ? यह तो अनार्यों का कर्म है। यह न स्वर्ग देनेवाला है और न कीर्त्ति करनेवाला है।

क्लैब्यं मा स्म गमः पार्थ नैतत्वय्युपपद्यते।
क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परन्तप॥

—गीता २।३

अर्जुन! नपुंसकता मत दिखा। यह तुझे शोभा नहीं देता। हृदय की दुर्बलता त्याग और युद्ध कर।

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः॥

—गीता २।२३

अर्जुन! आत्मा अमर है। शस्त्र इसे काट नहीं सकते। अग्नि इसे जला नहीं सकता, जल इसे गला नहीं सकता और वायु इसे सुखा नहीं सकता।

हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम्।
तस्मादुत्तिष्ठ कौन्तेय युद्धाय कृतनिश्चयः॥

—गीता २।३७

अर्जुन! यदि तू युद्ध में मर गया तो तुझे स्वर्ग के द्वार खुले मिलेंगे और यदि जीत गया तो पृथिवी का राज्य मिलेगा, अतः युद्ध के लिए निश्चय कर और खड़ा हो।

श्रीकृष्ण के इस अमर एवं अद्वितीय उपदेश का

अर्जुन पर आशातीत प्रभाव पड़ा। अर्जुन का मोह दूर हुआ। वह दुगुने जोश और चौगुने उत्साह से लड़ने के लिए तैयार हो गया।

भीष्म-वध

महाभारत के विनाशकारी युद्ध में १८ दिन तक लोहे-से-लोहा बजा। प्रथम दस दिन तक अद्वितीय योद्धा बाल-ब्रह्मचारी भीष्म ने कौरव-सेना की बागडोर सँभाली। नौ दिन तक युद्ध होता रहा, परन्तु उनके पराक्रम में कोई अन्तर नहीं आया। उनके जीते जी विजय असम्भव थी। कृष्णजी उनके मारने का उपाय सोचने लगे। एक रात्रि को वे भीष्मजी के पास गये और उन्हीं से उनकी मृत्यु का रहस्य पूछ लिया। भीष्मजी की प्रतिज्ञा थी कि "मैं स्त्री या स्त्रीरूप नपुंसक पर हथियार नहीं चलाऊँगा।" बस, दसवें दिन श्रीकृष्ण ने शिखण्डी को भीष्म के सामने खड़ा कर दिया। अर्जुन ने शिखण्डी के पीछे रहकर भीष्म पर बाणवर्षा की। भीष्म धराशायी हो गये।

जयद्रथ-वध

भीष्म के पश्चात् द्रोणाचार्य कौरवदल के सेनापति बने। दुर्योधन के आग्रह पर आपने युधिष्ठिर को पकड़ने के लिए चक्रव्यूह की रचना की। उधर अर्जुन को संशप्तकों ने एक ओर बुला लिया। उस दिन युद्ध का सारा भार अभिमन्यु पर आ पड़ा। अभिमन्यु व्यूह भेदकर अन्दर प्रविष्ट हुए। उन्होंने द्रोण और कर्ण आदि महारथियों के छक्के छुड़ा दिये। अन्ततोगत्वा सात महारथियों ने मिलकर उन्हें मार दिया। जब सन्ध्या समय अर्जुन वापस लौटे तो उन्हें यह दुःखद समाचार मिला कि अभिमन्यु अब इस संसार में नहीं रहा। अर्जुन के हृदय को गहरा आघात

लगा। जब अर्जुन को पता लगा कि अभिमन्यु की हत्या का प्रमुख कारण जयद्रथ था, तब उन्होंने प्रतिज्ञा की—''यदि कल सूर्यास्त से पूर्व जयद्रथ का वध न कर लूँ तो स्वयं जलती अग्नि में प्रविष्ट हो जाऊँगा।'' उनकी यह प्रतिज्ञा सुन श्रीकृष्णजी ने कहा—

अत्यन्त रोषावेग में तुमने किया है प्रण कड़ा।
अब यत्न क्या इसका सखे? यह कार्य है दुष्कर बड़ा॥
यों सुन वचन गोविन्द के निर्भय धनञ्जय ने कहा।
निश्चय मरेगा कल जयद्रथ प्राप्त होगी जय मुझे।
हे देव! मेरे यत्न तुम हो मत दिखाओ भय मुझे॥

—जयद्रथ-वध

अर्जुन ने कहा—मुझे तो प्रतिज्ञा करनी थी कर ली, कैसे पूर्ण होगी यह आपका कार्य है। दूसरे दिन अर्जुन जयद्रथ को मारने के लिए कौरवों की सात अक्षौहिणी सेना का सफ़ाया करते हुए जयद्रथ के सम्मुख पहुँचे और अपने तीखे बाणों से शत्रुओं को गाजर-मूली की भाँति काटने लगे। योद्धाओं के मस्तक कट-कटकर भूमि पर गिरने लगे, पृथिवी रक्त से लाल हो गई। सेना के अधिकांश योद्धाओं को मारकर अर्जुन ने जयद्रथ पर आक्रमण किया। जयद्रथ ने भी वीरतापूर्वक युद्ध करते हुए श्रीकृष्ण और अर्जुन को घायल करके एक बाण से अर्जुन की ध्वजा को बींध डाला। अर्जुन ने तुरन्त ही जयद्रथ के ध्वज-दण्ड को काट डाला। इसी समय सूर्य को तीव्र गति से अस्ताचल की ओर जाते देख श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा—''हे महाबाहु पार्थ! यह सिन्धुराज जयद्रथ प्राण बचाने की इच्छा से भयभीत होकर खड़ा है और उसे छह वीर महारथियों ने अपने बीच में कर रक्खा है। इन छह

महारथियों (दुर्योधन, कर्ण, वृषसेन, मद्रराज शल्य, अश्वत्थामा और कृपाचार्य) को परास्त किये बिना सिन्धुराज को बिना माया के जीता नहीं जा सकता, अतः—

योगमत्र विधास्यामि सूर्यस्यावरणं प्रति।
अस्तंगत इति व्यक्तं द्रक्ष्यत्येकः स सिन्धुराट्॥

—द्रोणपर्व० १४६।६४

मैं सूर्यदेव को ढकने के लिए कोई युक्ति करूँगा, जिससे अकेला सिन्धुराज ही सूर्य को स्पष्टरूप से अस्त हुआ देखेगा।''

हे अर्जुन! वैसा अवसर आने पर तुम उसके ऊपर प्रहार कर देना। तुम यह मत समझ लेना कि सूर्य अस्त हो गया है।

ततोऽसृजत् तमः कृष्णः सूर्यस्यावरणं प्रति।
योगी योगेन संयुक्तो योगिनामीश्वरो हरिः।
सृष्टे तमसि कृष्णेन गतोऽस्तमिति भास्करः॥

—द्रोण० १४६।६७, ६८

तब योगी, योगयुक्त, योगेश्वर श्रीकृष्ण ने सूर्य को छिपाने के लिए अन्धकार की सृष्टि की और सूर्यदेव अस्त हो गये।

सूर्य को अस्त हुए देख कौरवदल के योद्धा हर्षमग्न हो गये। कौरव सैनिकों को सूर्य दिखाई नहीं दे रहा था, केवल जयद्रथ को यह दिखाई दे रहा था कि अभी सूर्य अस्त नहीं हुआ है—

ते प्रहृष्टा रणे राजन् नापश्यन् सैनिका रविम्।
उन्नाम्य वक्त्राणि तदा स च राजा जयद्रथः॥

—द्रोण० १४६।७०

उस युद्ध-स्थल में हर्षमग्न हुए कौरव-सैनिकों क
सूर्य दिखाई नहीं देता था, केवल राजा जयद्रथ बार-बा
मुँह ऊँचा करके सूर्य की ओर देख रहा था।

जिस समय जयद्रथ सूर्य की ओर देख रहा था, त
श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा—''अर्जुन! इस समय जयद्र
तुम्हारा भय छोड़कर सूर्य की ओर देख रहा है। इसके व
का यही अवसर है, तुम शीघ्र इसका मस्तक काट डालो।'

श्रीकृष्ण के ऐसा कहने पर अर्जुन ने अपनी भीष
बाण-वृष्टि द्वारा कौरव महारथियों को घायल कर जयद्र
पर आक्रमण किया।

तं समीपस्थं दृष्ट्वा लेलिहानमिवानलम्।
जयद्रथस्य गोप्तारः संशयं परमं गताः॥

—द्रोण० १४६।७

अपनी भीषण लपटों से सबको चाट जानेवाली अ
के समान अर्जुन को निकट खड़ा देख जयद्रथ के रक्ष
भारी संशय में पड़ गये।

अर्जुन पूरे उत्साह के साथ लड़ा, परन्तु जयद्रथ वे
रक्षकों ने उसे अकेला छोड़ दिया। बस, श्रीकृष्ण यह
चाहते थे कि छह महारथी, जो जयद्रथ की रक्षा कर र
हैं, वे पृथक् हो जाएँ और अर्जुन तथा जयद्रथ में द्वन्द्व-
युद्ध हो।

अर्जुन और जयद्रथ का द्वन्द्व-युद्ध प्रारम्भ हुआ। तब
श्रीकृष्ण ने कहा—''धनञ्जय! तुम दुरात्मा सिन्धुराज क
मस्तक शीघ्र काट डालो, क्योंकि सूर्य अस्त होना ही
चाहता है।'' यह सुन अर्जुन ने एक तेजस्वी बाण से
जयद्रथ का मस्तक काट डाला। अर्जुन के द्वारा जयद्रथ

के मारे जाने पर श्रीकृष्ण ने अपने रचे हुए अन्धकार को समेट लिया।

पश्चाज्जातं महीपाल तव पुत्रैः सहानुगः।
वासुदेवप्रयुक्तेयं मायेति नृपसत्तम॥

—द्रोण० १४६।१३३

(सञ्जय ने धृतराष्ट्र से कहा) हे नृपश्रेष्ठ! महीपाल! जयद्रथ-वध के पश्चात् सेवकोंसहित आपके पुत्रों को यह ज्ञात हुआ कि अन्धकार के रूप में यह तो कृष्ण की माया थी।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि जयद्रथ मरते दम तक धोखे में नहीं था। एक बात और, दुर्योधन ने मरते हुए श्रीकृष्ण को अनेक गालियाँ दी हैं, परन्तु यह बात उसने भी नहीं कही कि श्रीकृष्ण ने जयद्रथ को धोखे से मरवाया था।

दिन को रात्रि में परिवर्तित कर देना और रात का दिन बना देना, यह एक योग=विधि=उपाय था। जब शाल्व का कृष्ण से युद्ध हुआ तो शाल्व ने इसी प्रकार की माया रची थी। श्रीकृष्णजी ने प्रज्ञास्त्र द्वारा उसे उड़ा दिया था। जब श्रीकृष्णजी उस योग=उपाय की रोक जानते थे तो निश्चय ही वे दिन में अन्धकार फैलानेवाली विद्या से भी अपरिचित नहीं होंगे। जब महाभारत के युद्ध में नारायण और विद्युदस्त्र आदि विद्यमान् थे तो इस प्रकार के योग भी अवश्य ही रहे होंगे, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं। द्वितीय महायुद्ध में हिटलर ने भी कई बार ऐसे प्रयोग किये थे जिनसे दिन में ही अन्धकार छा जाता था और ऐसा प्रतीत होता था कि रात्रि हो गई, परन्तु थोड़ी देर में फिर सूर्य चमकता दिखाई देता था, अतः इस घटना

में असम्भव कुछ नहीं है। यह योगेश्वर कृष्ण की नी और युद्ध-कौशल का एक उदाहरण है।

द्रोण-वध

द्रोणाचार्य के वध के सम्बन्ध में यह कथा प्रचलि है कि श्रीकृष्ण ने पाण्डवों से कहा कि धर्म-युद्ध द्वा द्रोणाचार्य को जीतना असम्भव है, अतः तुम ऐसा उपा करो जिससे तुम्हारा नाश न हो और वह उपाय उन्हों यह बताया कि द्रोणाचार्य को अपने पुत्र से बहुत मोह है यदि कोई व्यक्ति उनके पास जाकर यह कह दे कि अश्वत्थामा मारा गया तो वे युद्ध करना छोड़ देंगे। बस उसी अवस्था में उनका वध हो सकता है। भीम ने तुरन्त एक हाथी को मारकर यह प्रसिद्ध कर दिया कि अश्वत्थाम मारा गया। द्रोणाचार्य को विश्वास नहीं हुआ, अतः उन्हों युधिष्ठिर से अपने पुत्र के विषय में जानना चाहा। श्रीकृष्ण ने युधिष्ठिर से भी कहा कि कह दो अश्वत्थामा मा गया। युधिष्ठिर ने उनके कहने में आकर इतना ही कह था कि '**अश्वत्थामा हतः**' कि बाजे बजवा दिये ग जिससे आचार्य अगला वाक्य न सुन सके। उनका पू वाक्य यह बताया जाता है—''**आश्वत्थामा हतो नरो व कुञ्जरो वा**''—अश्वत्थामा मारा गया, यह पता नहीं कि वह मनुष्य था अथवा हाथी। यह श्लोक महाभारत में है ही नहीं। बंकिमबाबू के अनुसार यह महाभारत के कथाका काशीराम व्यास की कपोल-कल्पना है।

श्रीकृष्ण पर इससे बढ़कर लाञ्छन और क्या हो सकता है? महर्षि दयानन्द के शब्दों में उन्होंने जन्म से मरणपर्यन्त कोई भी बुरा कार्य नहीं किया। ऐसा सदाचारी व्यक्ति ऐसा घृणित और कुत्सित परामर्श किस प्रकार दे

सकता है?

फिर प्रश्न यह है कि द्रोणाचार्य का वध किस प्रकार हुआ? घटनाओं के तर्कपूर्ण विवेचन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि आश्वमेधिक पर्व में श्रीकृष्ण द्वारा वर्णित वृतान्त ही सत्य है। द्रोणाचार्य के सम्बन्ध में उन्होंने इतना ही कहा है कि धृष्टद्युम्न और द्रोणाचार्य का युद्ध पाँच दिन तक होता रहा। द्रोण लड़ते-लड़ते थक गये और धृष्टद्युम्न ने उनका सिर काट लिया।

कर्ण-वध

द्रोण के पश्चात् कर्ण कौरव-सेनापति पद पर अभिषिक्त हुआ। उसने घनघोर युद्ध कर पाण्डवों के छक्के छुड़ा दिये। उस दिन युधिष्ठिर भी उसके हाथों से अति पीड़ित हुए। वे मैदान छोड़कर शिविर में आ गये। अर्जुन को जब युधिष्ठिर युद्धक्षेत्र में दिखाई न दिये तो वह घबराया और युधिष्ठिर का पता लगाने शिविर में आया। युधिष्ठिर अपनी पराजय से जले-कटे बैठे थे। जब अर्जुन उनके शिविर में आये तो वे कर्ण-वध का समाचार सुनने के लिए बहुत उत्सुक थे। जब उन्हें पता लगा कि कर्ण अभी जीवित है तो उन्होंने अर्जुन को बहुत फटकारा और यहाँ तक कह दिया कि तेरे गाण्डीव को धिक्कार है, तू उसे किसी अन्य बलशाली राजा को सौंप दे, यह तुझे शोभा नहीं देता।

गाण्डीव का नाम सुनते ही अर्जुन ने तलवार निकाली। श्रीकृष्ण समझ गये, दाल में कुछ काला है। कृष्णजी ने कहा—''पितृतुल्य भाई की हत्या करोगे? यदि तुम्हें युधिष्ठिर की हत्या करनी है तो उन्हें 'आप' की बजाय 'तुम' कहकर पुकार लो। इन्हें जली-कटी सुना दो।''

अर्जुन ने जी भरकर युधिष्ठिर की निन्दा की। अब अर्जुन ने आत्महत्या करने के लिए पुनः तलवार उठाई तो श्रीकृष्ण ने कहा—"आत्म-प्रशंसा कर लो, क्योंकि अपने मुँह से अपनी प्रशंसा ही सज्जनों के लिए मृत्यु के समान है।" अब अर्जुन ने खूब आत्मश्लाघा की। उधर युधिष्ठिर अर्जुन के इस उच्छृङ्खल व्यवहार को देखकर वन जाने के लिए तैयार हो गये। कृष्णजी ने समझा-बुझाकर उन्हें भी मनाया। कृष्णजी ने अपनी नीतिमत्ता से दोनों भाइयों के हृदय में जो रोष, क्रोध, वैमनस्य और ग्लानि के भाव आ गये थे, उन्हें किसी प्रकार मिटा दिया।

युधिष्ठिर का हार्दिक आशीर्वाद लेकर अर्जुन कर्ण से भिड़ने चला। युद्ध आरम्भ हुआ। अर्जुन के लिए कर्ण उधार खाये बैठा था। उसकी प्रतिज्ञा थी—'अर्जुन रहेगा या मैं।' रोमाञ्चकारी युद्ध हुआ। युद्ध करते हुए कर्ण के रथ का पहिया पृथिवी में धँस गया। कर्ण रथ-चक्र को दलदल से निकालने के लिए नीचे उतरा। ठीक उसी समय श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा कि यही अवसर है, निशाना साधो और तीर चलाओ। कर्ण चिल्लाया कि निहत्थे पर वार करना धर्म नहीं है। इसपर नीतिज्ञ कृष्ण बोले—"अरे कर्ण! अब 'धर्म-धर्म' चिल्लाता है, परन्तु ओ कर्ण!

यद् द्रौपदीमेकवस्त्रां सभायामानाययेस्त्वं च सुयोधनश्च।
दुःशासनः शकुनिः सौबलश्च न ते कर्ण प्रत्यभात्तत्र धर्मः॥

—कर्णपर्व ९१।२

जिस समय तुम, दुःशासन, शकुनि और सौबल सब मिलकर ऋतुमती, एकवस्त्रा द्रौपदी को घसीट लाये थे, उस समय तुम्हें धर्म की याद नहीं आई और—

यदाभिमन्युं बहवो युद्धे जघ्नुर्महारथाः।
परिवार्य रणे बालं क्व ते धर्मस्तदा गतः॥

—कर्ण० ९१।११

जब तुम बहुत-से महारथियों ने मिलकर अकेले अभिमन्यु को घेरकर मार डाला था, उस समय तुम्हारा धर्म कहा गया था? अरे क्षत्रिय धर्म को जानने का अभिमान करनेवाले तुम भी तो उनमें सम्मिलित थे।"

इतना कहकर उन्होंने अर्जुन को आदेश दिया कि इस प्रकार दल-दल में फँसे हुए कर्ण का वध करना पुण्य है। यह है श्रीकृष्ण की नीति का ज्वलन्त उदाहरण।

श्रीकृष्ण के विशेष गुण

इस लघु पुस्तक में श्रीकृष्ण के जीवन की सभी घटनाओं पर विचार करना असम्भव है, अतः अब हम उनके जीवन के कुछ अति महत्त्वपूर्ण गुणों और घटनाओं को देखेंगे।

श्रीकृष्ण में कामदेव-जैसी कोमलता और सुन्दरता, आचार्य बृहस्पति-जैसी प्रतिभा, जनक-जैसा ज्ञान, बुद्ध-जैसी अहिंसा और दया, राम-जैसा आर्यसंस्कृति से प्रेम और सिंह-जैसा पराक्रम था। संक्षेप में विश्व के सभी सद्गुण उनमें विद्यमान थे।

श्रीकृष्ण के प्रत्येक कृत्य में सर्वाङ्ग पूर्णता और प्रतिभा नाचती है। मधुरता और वीरता, प्रेम और अनासक्ति, सेवा और श्रेष्ठता, सत्य और सहिष्णुता, निर्भीकता और निर्लोभता की वे साक्षात् मूर्त्ति थे।

कूटनीतिज्ञ—महाभारत का प्रत्येक पृष्ठ श्रीकृष्ण की कूटनीति की साक्षी दे रहा है। वर्त्तमान युग में इटली के

'मेकेयाविली' को कूटनीतिज्ञों में सर्वोपरि समझा जाता है परन्तु भारतवर्ष के कौटिल्य के समक्ष वह निरा छोकरा लगता है। कौटिल्य के अर्थशास्त्र का लोहा आधुनिक विद्वान् एवं बुद्धिमान् भी मानते हैं। कौटिल्य ने असुर गुरु शुक्राचार्य को श्रेष्ठ माना है। ये शुक्राचार्य अपने नीतिसार के उहसंहार में श्रीकृष्ण के सम्बन्ध में डिण्डिम घोष के साथ कहते हैं—

न कूटनीतिरभवत् श्रीकृष्णसदृशो नृपः।

—शुक्रनीतिसारः १।१२।९७

अर्थात् आज तक पृथिवी पर श्रीकृष्ण के समान कोई कूटनीतिज्ञ राजा नहीं हुआ।

पाण्डवों का सम्पूर्ण राजनीति-चक्र उन्हीं के हाथ में था। उन्हीं की कूटनीति से भीष्मपितामह, आचार्य द्रोण, जयद्रथ, कर्ण, दुर्योधन आदि का वध सम्भव हुआ। यदि श्रीकृष्ण पाण्डवों के पक्ष में न होते तो महाभारतयुद्ध का रूप कुछ और ही होता। अर्जुन ने तो अपना गाण्डीव धनुष फेंक ही दिया था। युधिष्ठिर भी कमण्डलु उठाकर वन में चले गये होते।

वीरता—महाभारत में श्रीकृष्ण की वीरता और शक्ति का अनेक स्थलों पर वर्णन मिलता है। भीष्मपितामह और अर्जुन के युद्ध के समय जब कृष्ण ने देखा कि महाप्रतापी भीष्म अपनी बाण-वर्षा की बाढ़ में अर्जुन को पीड़ित कर रहे हैं, तो अतुल पराक्रमी श्रीकृष्ण अपनी भुजाओं को उठाते हुए एक रथ का पहिया ले महाबली सिंह की भाँति भीष्म पर टूट पड़े।

शील—श्रीकृष्ण के शील का पता इस बात से लगता

है कि जब वे व्यास, धृतराष्ट्र, कुन्ती और युधिष्ठिर आदि बड़ों से मिलते थे, तो सदा उनके चरण छूते थे। देखिए—

कृष्णोऽहमस्मीति निपीड्य पादौ
युधिष्ठिरस्याजमीढस्य राज्ञः। —आदि० १९०।२०

"मैं कृष्ण हूँ", ऐसा कहकर उन्होंने युधिष्ठिर के चरणों का स्पर्श किया।

सन्ध्या-उपासना—सन्ध्या और हवन श्रीकृष्ण के जीवन के महत्त्वपूर्ण अङ्ग थे। दूतकर्म पर जाते हुए मार्ग में सूर्यास्त के समय उन्होंने रथ रुकवाकर सन्ध्या की—

अवतीर्य रथात् तूर्णं कृत्वा शौचं यथाविधि।
रथमोचनमादिश्य सन्ध्यामुपविवेश ह॥

—मह० उद्यो० ८४।२१

जब सूर्यास्त होने लगा तब श्रीकृष्ण शीघ्र ही रथ से उतरकर, घोड़ों को रथ से खोलने की आज्ञा देकर और विधिपूर्वक शौच-स्नान करके सन्ध्योपासना करने लगे।

हस्तिनापुर में कौरव-सभा में जाने से पूर्व भी उनके सन्ध्या, अग्निहोत्र एवं जप करने का उल्लेख मिलता है। युद्ध के दिनों में भी वे सन्ध्या अवश्य करते थे।

सहिष्णुता—सहिष्णुता के श्रीकृष्ण साकार स्वरूप थे। कंस के अत्याचार झेले। जरासन्ध के प्रहार और शिशुपाल की वचनरूपी तलवार के कठोर वार सहे, परन्तु अडोल रहे।

निर्भीकता—श्रीकृष्ण के प्रत्येक कार्य में निर्भीकता और आत्मसम्मान जाग्रत् रहता था। कौरवों की सभा में चारों ओर से शत्रुओं से घिरे रहने पर भी उन्होंने अपने आत्मसम्मान की रक्षा की और किसी भी प्रकार दुर्योधन

के न मानने पर धृतराष्ट्र को सलाह दी—

राजन् दुर्योधनं बद्ध्वा ततः संशाम्य पाण्डवैः।
त्वकृते न विनश्येयुः क्षत्रियाः क्षत्रियर्षभः॥

—उद्यो० १२८।५०

राजन्! आप दुर्योधन को बाँधकर पाण्डवों से सन्धि कर लो। हे क्षत्रियश्रेष्ठ! ऐसा न हो कि आपके कारण क्षत्रियों का विनाश हो जाए।

निर्लोभता—श्रीकृष्णजी ने राज्यक्रान्तियाँ कराईं, परन्तु किसी लोभ-लालच से नहीं। उन्होंने जो भी देश जीता उसे अपने अधीन करने की चेष्टा नहीं की और न उन्होंने किसी देश को जीतकर अपने भाई-बन्धु, मित्रादि को वहाँ का राजा बनाया। कंस का वध करके श्रीकृष्ण ने उसके पिता उग्रसेन को राज्य दे दिया। इसी भाँति जरासन्ध का वध करके उसके पुत्र सहदेव को राजा बनाया और भौमासुर को मारकर उसके पुत्र भगदत्त को राज्य पर नियुक्त किया।

नैतिकता—श्रीकृष्ण का सम्पूर्ण जीवन नैतिकता के आधार पर प्राणिमात्र का सुख-चिन्तन करते हुए व्यतीत हुआ। अन्तिम बार श्रीकृष्ण एक विकट धर्म-सङ्कट में फँस गये। उनके ही बन्धु-बान्धव, परिवार के सदस्य और सजातीय उद्दण्ड हो गये। विश्व में वे घोर अशान्ति का कारण बनते जा रहे थे। जीवनपर्यन्त श्रीकृष्ण ने विश्व-कल्याण किया। इस बार भी वे न चूके। यादव कुल का अपने देखते-देखते अपने ही हाथों उन्होंने अन्त करा दिया।

नम्रता—राजसूय-यज्ञ में श्रीकृष्ण ने ब्राह्मणों की पूजा और उनके चरण धोने का कार्य अपने ऊपर लिया। यह

उनकी नम्रता का उत्कृष्ट उदाहरण है।

मैत्री भावना—श्रीकृष्ण आदर्श मित्र थे। महाभारत में कृष्ण-सुदामा की मैत्री का उल्लेख तो नहीं है, परन्तु अर्जुन के साथ उनकी कैसी घनिष्ठ मित्रता थी, यह उनके निम्न वचन से ज्ञात होता है—

तव भ्राता मम सखा सम्बन्धी शिष्य एव च।
मासान्युत्कृत्य दास्यामि फाल्गुनार्थे महीपते॥

—महा० भीष्म० १०७।२३

श्रीकृष्ण युधिष्ठिर से कहते हैं—तुम्हारा भाई अर्जुन मेरा मित्र, सम्बन्धी और शिष्य है, उसके हित के लिए मैं अपना मांस भी काटकर दे सकता हूँ।

इस प्रकार श्रीकृष्ण के जीवन में निजी और सार्वजनिक जीवन के आदर्श और उत्कर्षों का अद्भुत एवं उत्कृष्ट समन्वय पाया जाता है।

श्रीकृष्णजी को अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित करते हुए महर्षि दयानन्द लिखते हैं—

''देखो, श्रीकृष्णचन्द्र का इतिहास महाभारत में अत्युत्तम है। उनका गुण-कर्म-स्वभाव और चरित्र आप्त पुरुषों के सदृश्य हैं, जिसमें कोई अधर्म का आचरण श्रीकृष्णजी ने जन्म से मरणपर्यन्त कुछ भी बुरा काम किया हो, ऐसा नहीं लिखा।''

—सत्यार्थप्रकाश, ११वाँ समुल्लास

यह है कृष्ण का सच्चा स्वरूप! आर्यजगत् उन्हें सदाचारी और संयमी मानता है, अन्य लोग लम्पट तथा धूर्त। आर्यजगत् उन्हें असिधर, गदाधर और धनुर्धर मानता है, तो कुछ लोग उन्हें मुरलीधर और वंशीधर कहते हैं। आर्यजगत् उन्हें योगेश्वर मानता है तो कुछ लोग भोगेश्वर।

आर्यजगत् उन्हें साहूकार मानता है, तो अन्य लोग उन्हें माखनचोर कहने में गर्व अनुभव करते हैं। हमारी समझ में नहीं आता जो एक राजा के पुत्र थे और जिनका पालन-पोषण नन्द के यहाँ हुआ, जो नौ लाख गौओं के स्वामी बताये जाते थे [वैसे यह असम्भव है, गोकुल में नौ लाख गाएँ कहाँ खड़ी होंगी?]। उन्हें दूसरे के घर में माखन चुराने की क्या आवश्यकता थी। उन्हें माखनचोर माननेवालों की बुद्धि की बलिहारी है!

इस सम्बन्ध में मुझे एक घटना याद आती है। महर्षि दयानन्द पूना में पहुँचे। वहाँ उन्होंने ५४ व्याख्यान दिये। उनका बड़ा मान और सम्मान हुआ। विदा करने से पूर्व उन्हें हाथी पर बिठाकर जलूस निकालने का प्रबन्ध होने लगा। विरोधियों को बहुत बुरा लगा। उन्होंने ऋषिवर को अपमानित करने के लिए एक व्यक्ति को उसका मुँह काला करके गधे पर बैठा दिया और उसके पीछे नाचते-गाते और तालियाँ बजाते चले कि 'यह दयानन्द है, यह दयानन्द है।' एक भक्त ने जब यह दृश्य देखा तो चन्द्रकवि के शब्दों में स्वामीजी से कहा—

चढ़ाकर इक गधे पर आदमी मुँह कर दिया काला।
पुकारें नाम ले भगवन्! यह अत्याचार करते हैं॥

चन्द्रकवि के शब्दों में ही स्वामीजी ने उत्तर दिया—

मनव्वर चाँद सा मुखड़ा तो है असली दयानन्द का।
वे मसनूई दयानन्दों की मिट्टी ख्वार करते हैं॥

आर्यजगत् तो असली श्रीकृष्ण को मानता है। उसी के दिव्य-जीवन की झाँकी यहाँ प्रस्तुत की गयी है। माखन चुरानेवाला, गोपियों के वस्त्र उठानेवाला और उनके साथ व्यभिचार करनेवाला कृष्ण कोई दूसरा होगा,

क्योंकि एक ही नाम के अनेक व्यक्ति हो सकते हैं।

क्या कृष्ण ईश्वर थे?

श्रीकृष्ण न ईश्वर थे और न ईश्वर के अवतार। ऋग्वेद ७।३५।१३ में ईश्वर को **'अज'**—अजन्मा और यजुर्वेद ४०।८ में उसे **'अकायम्'**—शरीर-रहित कहा गया है। श्रीकृष्ण का जन्म भी हुआ और वे शरीरधारी भी थे, अतः वे मनुष्य ही थे। स्वयं कृष्णजी ने उन्हें ईश्वर कहनेवालों को परले दर्जे का मूर्ख बताया है। देखिए—

अव्यक्तं व्यक्तिमापन्नं मन्यन्ते मामबुद्धयः।
परं भावमजानन्तो ममाव्ययमनुत्तमम्॥[१]

—गीता ७।२४

सर्वव्यापक ईश्वर के विकाररहित, सर्वश्रेष्ठ परमात्मा-रूपी भाव को न जानते हुए मूर्ख लोग मुझ शरीरधारी को परमात्मा कहते हैं।

'श्रीकृष्ण ईश्वर के अवतार थे' यह बात पुराणों से भी सिद्ध नहीं होती। इसके लिए अनेक में से केवल एक प्रमाण दिया जाता है—

जब पृथिवी पर पापों का भार बहुत बढ़ गया तब वह देवताओं के पास गई और उनसे अपना भार उतारने की प्रार्थना की। देवताओं ने ब्रह्मा से कहा और ब्रह्मा उन सबको लेकर क्षीरसागर के तट पर हरि के पास पहुँचे

१. ''अह व्याप्तौ'' धातु से अहं शब्द की निष्पत्ति होती है। अहं और मम एक ही श्रेणी के शब्द हैं, अतः मम का अर्थ सर्वव्यापक ईश्वर होता है। यदि यह शङ्का हो कि 'माम्' का अर्थ भी इसी दृष्टिकोण से किया जाए तो प्रसङ्गानुसार माम् का अर्थ भी परमेश्वर ही होगा। यहाँ कहनेवाले श्रीकृष्ण हैं और यह शब्द उन्हीं के लिए है।

और वहाँ उन्होंने हरि की स्तुति की, तब—

एवं संस्तूयमानस्तु भगवान् परमेश्वरः।
उज्जहारात्मनः केशौ सितकृष्णौ महामुने॥

—विष्णु० पु० ५।१।५८

इस प्रकार स्तुति किये जाने पर हरि ने अपने श्याम और श्वेत दो केश उखाड़े और देवताओं से बोले—''मेरे ये दोनों केश पृथिवी पर अवतार लेकर पृथिवी के भाररूप कष्ट को दूर करेंगे।''

वसुदेवस्य या पत्नी देवकी देवतोपमा।
तत्रायमष्टमो गर्भो मत्केशो भविता सुरा॥

—वि० पु० ५।१।६३

वसुदेवजी की जो देवी के समान देवकी नाम की भार्या है, उसके आठवें गर्भ में मेरा यह (श्याम) केश अवतार लेगा।

कहिए कैसी रही! यहाँ तो कृष्ण को बाल का अवतार बना दिया।

प्रश्न हो सकता है कि जब श्रीकृष्ण ईश्वर नहीं हैं, तो हमने इस पुस्तक का नाम 'भगवान् कृष्ण' क्यों रक्खा तथा उन्हें बार-बार 'भगवान्' शब्द से क्यों सम्बोधित किया। इसका उत्तर है—

ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसः श्रियः।
ज्ञानवैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतिरणा॥

—वि० पु० ६।५।७४

सम्पूर्ण ऐश्वर्य, धर्म, यश, श्री, ज्ञान और वैराग्य—इन छह का नाम 'भग' है। जिसके पास इनमें से एक भी हो, उसे भगवाला—भगवान् कहा जा सकता है।

श्रीकृष्ण के जीवन में जैसाकि ऊपर के विवेचन से स्पष्ट है, थोड़ी-बहुत मात्रा में ये सब गुण विद्यमान थे। इसी दृष्टि से उन्हें 'भगवान्' लिखा गया है, जो उचित ही है।

कुछ लोग श्रीकृष्ण को १६ कलापूर्ण अवतार मानते हैं, परन्तु १६ कलावाला भी मनुष्य ही होता है। प्रश्नोपनिषद् के अनुसार १६ कलाएँ ये हैं—

(१) प्राण=जीवनशक्ति, (२) श्रद्धा, (३) खम्=प्रसन्नता, (४) वायु=गतिशीलता, (५) ज्योति=ज्ञानप्रकाश, (६) आपः=नम्रता, (७) पृथिवी=सहनशीलता, (८) इन्द्रियाँ, (९) मन, (१०) अन्न=धारणशक्ति, (११) वीर्य, (१२) तप, (१३) मन्त्र=मननशक्ति, (१४) कर्म=पुरुषार्थ, (१५) लोक=लोक-व्यवहार और (१६) नाम=यश।

प्रत्येक व्यक्ति इन्हें धारण कर सकता है और जो इन्हें धारण करता है, वह षोडशी=सोलह कलावाला बन जाता है।

इस विवेचन से स्पष्ट है कि श्रीकृष्ण एक महापुरुष थे और उन्हें महापुरुष मानकर ही हम उनके जीवन से शिक्षा लेकर अपने जीवनों को उन्नत बना सकते हैं।

श्रीकृष्ण की आदर्श दिनचर्या

भागवतपुराण दशम स्कन्ध अध्याय ७० में श्रीकृष्ण की मनुष्यमात्र के लिए अनुकरणीय आदर्श दिनचर्या का उल्लेख हुआ है। पाठकों के लाभार्थ हम उसे यहाँ प्रस्तुत करते हैं—

ब्राह्ममुहूर्त्त उत्थाय वार्युपस्पृश्य माधवः।
दध्यौ प्रसन्नकरण आत्मानं तमसः परम्॥४॥

श्रीकृष्णचन्द्रजी ब्राह्ममुहूर्त्त में (सूर्योदय से डेढ घण्टा पूर्व) उठकर पवित्र जल से हाथ-मुँह धोकर अत्यन्त

प्रसन्न हो हृदय में प्रकृति से परे ज्योति:स्वरूप परमब्रह्म का ध्यान करने लगे।

इससे यह शिक्षा मिलती है कि गृहस्थों को प्रात:काल सूर्योदय से पूर्व अवश्य उठ जाना चाहिए और आलस्यरहित होकर हाथ-मुख प्रक्षालन कर, परमेश्वर का ध्यान करना चाहिए, क्योंकि ध्यान के लिए यही समय सर्वोत्तम है। नित्यप्रति प्रभु-ध्यान से शक्ति, सहायता, तेज, ओज और आनन्द की प्राप्ति होती है, अन्त:करण शुद्ध, पवित्र एवं निर्मल हो जाता है तथा जीव अपने लक्ष्य=परमात्मा-प्राप्ति की ओर अग्रसर होता है।

ध्यान के पश्चात्—

अथाप्लुतोऽम्भस्यमले यथाविधि
क्रियाकलापं परिधाय वाससी।
चकार सन्ध्योपगमादि सत्तमो
हुतानलो ब्रह्म जजाप वाग्यतः॥६॥

भगवान् श्रीकृष्ण ने स्वच्छ एवं पवित्र जल में डुबकी लगाकर स्नान किया, फिर स्वच्छ धोती पहनकर एवं दुपट्टा ओढ़कर बड़ी श्रद्धा और कुशलता के साथ विधिपूर्वक सन्ध्योपासन आदि नित्य कर्म किया। तदनन्तर वे हवन करके मौन होकर गायत्री का जप करने लगे। फिर—

उपस्थायार्कमुद्यन्तं तर्पयित्वाऽत्मनः कलाः।
देवानृषीन् पितृन् वृद्धान् विप्रानभ्यर्च्य चात्मवान्॥७

'**उद्वयं तमसस्परि स्वः**' आदि वेद-मन्त्रों से सूर्य का उपस्थान किया, अर्थात् इन मन्त्रों का पाठ करते हुए सूर्य का दर्शन किया, फिर देवता, ऋषि, पितर, वृद्ध और ब्राह्मणों का सत्कार किया।

इस प्रातश्चर्या से शिक्षा-ग्रहण करते हुए, हमें भी सूर्योदय से पूर्व स्नान का अभ्यास डालना चाहिए। स्नान से शरीर का मल धुल जाता है, शरीर की गर्मी शान्त होकर शरीर में नवचेतना, शक्ति, स्फूर्ति एवं कान्ति का सञ्चार होता है। स्नान के पश्चात् स्वच्छ वस्त्र पहनने से सात्त्विकता की वृद्धि होती है। मैले वस्त्र धारण से तमोगुण बढ़ता है। मैले वस्त्रधारी को लक्ष्मी छोड़ देती है। दैनिक-यज्ञ से अग्नि, वायु, जल आदि भौतिक देवों की शुद्धि होती है। इनकी शुद्धि से धन-धान्य और सुख-समृद्धि की वृद्धि होती है। घर की वायु भी शुद्ध हो जाती है, रोग-कृमियों का नाश हो जाता है। देव, ऋषि, पितर, वृद्ध और ब्राह्मणों के आदर-सत्कार से हमें उनके स्नेहपूर्ण आशीर्वाद प्राप्त होते हैं, जिससे सारे सङ्कट दूर होकर सब कामनाएँ सिद्ध होती हैं। महर्षि मनु कहते हैं—

अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः।
चत्वारि तस्य वर्धन्त आयुर्विद्यायशोबलम्॥

—मनु० २।१२१

जो मनुष्य प्रतिदिन वृद्धजनों का अभिवादन करते हैं, उन्हें प्रणाम करते हैं तथा उनकी सेवा करते हैं उनकी आयु, विद्या, यश और बल—ये चार सदा बढ़ते हैं।

छटे श्लोक में वाससी शब्द द्विवचनान्त है। इससे ज्ञात होता है कि सन्ध्या समय अधोवस्त्र और दुपट्टा दो वस्त्र धारण किये जाते थे। अन्यत्र भी इस प्रकार के उल्लेख प्राप्त होते हैं—

होमदेवार्चनाद्यासु क्रियासु पठने तथा।
नैकवस्त्रं प्रवर्त्तेत यत्नतः सर्वथा बुधः॥

—आह्निक सूत्रावलि

बुद्धिमान् को चाहिए कि यज्ञ में, उपासना में तथा अध्ययन के समय एक वस्त्र से प्रवृत्त न हों। आज राम और कृष्ण के वंशज और उनके नाम लेनेवाले यज्ञ में भी हैट-बूट, कोट और पैण्ट पहनकर बैठना चाहते हैं क्या कृष्ण-भक्त उनकी दिनचर्या से कुछ शिक्षा ग्रहण करेंगे?

महाभारत में भी श्रीकृष्ण की प्रातःकालीन दिनचर्या का इसी प्रकार का उल्लेख उपलब्ध होता है—

कृतोदकानुजप्यः स हुताग्निः समलंकृतः।
ततश्चादित्यमुद्यन्तमुपातिष्ठत माधवः॥

—महा० उद्यो० ९४।६

स्नान, सन्ध्या, जप और अग्निहोत्र करने के पश्चात् श्रीष्कृष्णजी ने अलंकृत होकर उदयकाल में सूर्य का उपस्थान किया।

महाभारत और भागवत में वर्णित श्रीकृष्ण की दिनचर्या से एक बात सुस्पष्ट है कि उन्होंने कहीं शिव, विष्णु, काली, भैरव अथवा अर्हन्त आदि की मूर्त्ति का दर्शन या पूजन नहीं किया। उनके किसी मन्दिर में जाने का उल्लेख भी नहीं है। '**ओ३म् कृतो स्मर**' (यजुः० ४०।१५) वेद के इस आदेश के अनुसार वे तो ओ३म् का ही जप करते रहे तथा '**यज्ञध्वं हविषा तना गिरा**' (ऋ० २।२।१) वेद के इस उपदेश के अनुसार मन, वाणी और शरीर से यज्ञ ही करते रहे।

आज का शिक्षित समाज या तो नास्तिकता के बहाव में बहकर यज्ञ, उपासना और जप से रहित है अथवा ग़लत उपासना कर रहा है। आज जो उपासक '**आजा मेरे कृष्ण कन्हैया**' की रट लगाते हैं अथवा '**कान्हा तेरे आवन दी लोड**' की धुन लगाते हैं, इनकी प्रार्थना सुनकर

यदि श्रीकृष्ण आ भी गये तो ठहरेंगे कहाँ? मन्दिर और शिवालयों में तो ठहर नहीं सकते, क्योंकि वहाँ उन्हें यज्ञकुण्ड, यज्ञपात्र, सामग्री और समिधाएँ तो मिलेंगी नहीं, अतः वे ठहरने के लिए आर्यसमाज मन्दिर में ही आएँगे।

हे राम और कृष्ण के भक्तो! श्रीराम और योगेश्वर कृष्ण के दिव्य-पथ का अनुसरण करते हुए अवैदिक उपासना को छोड़कर सन्ध्या और अग्निहोत्र को अपनाओ, इसी में आपका कल्याण है।

भगवान् कृष्ण के सन्देश

उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत्।
आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः॥

—गीता ६।५

मनुष्य संसार-सागर की विषय-वासनाओं में निमग्न अपने आत्मा को आत्मिकबल से निकाले, अपने आत्मा को अधोगति में न पहुँचाए, क्योंकि यह आत्मा आप ही तो अपना मित्र है और आप ही अपना शत्रु।

भगवान् श्रीकृष्ण का यह सन्देश आत्मोन्नति का स्वर्णसूत्र है।

स्त्रियोऽक्षा मृगया पानमेतत्कामसमुत्थितम्।
दुःखं चतुष्टयं प्रोक्तं यैर्नरो भ्रश्यते श्रियः॥

—वनपर्व १३।६

व्यभिचार करना, जूआ खेलना, शिकार खेलना और शराब पीना—ये चारों कामवासना से उत्पन्न होते हैं, इनसे दुःख होता है और मनुष्य की श्री तथा ऐश्वर्य नष्ट हो जाते हैं।

नाऽ ति प्रहीणरश्मिः स्यात्तथा भावविपर्यये।
विषादमर्छेद् ग्लानिं वाऽ प्येतमर्थं ब्रवीमि ते॥

—उद्योगपर्व ७७।१४

भाग्य चाहे विपरीत हो जाए तो भी निराश और हताश नहीं होना चाहिए। कैसी भी पराजय का मुख देखना पड़े, परन्तु मलिनता और ग्लानि को पास नहीं आने देना चाहिए।

यज्ञदानतपः कर्म न त्याज्यं कार्यमेव तत्।
यज्ञो दानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम्॥

—गीता १८।५

यज्ञ, दान, तप आदि तो करते ही रहना चाहिए। ये त्यागने योग्य नहीं है, क्योंकि यज्ञ, दान, तप ये तीनों ही बुद्धिमान् पुरुषों को पवित्र करनेवाले हैं।

परिशिष्ट

स्वर्ग में—

भगवान् श्रीकृष्ण के नाम

—एक भक्त का पत्र

भगवन्!

आप भक्तवत्सल हैं, भक्तों के तारक और उद्धारक हैं, उनके कष्ट-निवारक हैं। आपकी प्रतिज्ञा है—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥

—गीता ४।७

जब-जब धर्म की हानि होती है, अत्याचार, अनाचार, अधर्म और पापाचार बढ़ जाता है, तब-तब मैं अवतार लेकर संसार में आता हूँ।

नाथ! ऐसा प्रतीत होता है कि आप अपनी प्रतिज्ञा को भूल गये हैं, क्योंकि संसार में अधर्म और पाप बढ़ता चला जा रहा है और आप आने का नाम तक नहीं लेते।

भगवन्! आप हैं तो घट-घटवासी, परन्तु आज पता लगा कि आपको मृत्युलोक का तो कुछ भी ज्ञान नहीं है, लो, ऋषियों की भारत-भूमि में क्या कुछ हो रहा है, इसका दिग्दर्शन मैं कराता हूँ।

संसार का गुरु कहलानेवाला भारत आज अधोगति को प्राप्त हो रहा है। आज जहाँ देखो, जिधर देखो छल, फरेब, धोखेबाजी, मक्कारी, बेईमानी, दम्भ, घूँसखोरी और चोरबाजारी का बोल-बाला है। सत्य, सदाचार, सेवा, संयम आदि दैवी-सम्पत्ति का ह्रास हो रहा है और आसुरी-सम्पत्ति बढ़ रही है। सात-सात वर्ष की लड़कियों के
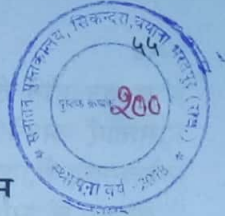
सन्तान होने लगी है। भ्रूण हत्याएँ और गर्भपात होते हैं, माताएँ अपने हृदय के टुकड़ों को समाज के भय से रेलगाड़ियों, वनों और गली-मुहल्लों में डाल देती हैं। बाजार में सामान खरीदने जाएँ तो कोई वस्तु शुद्ध नहीं मिलती, प्रत्येक वस्तु में मिलावट है, हर वस्तु नक़ली है यहाँ तक कि विष भी नकली है, मसाले, दाल आदि की मिलावट का तो कहना ही क्या?

गोपाल! अपनी प्यारी गौओं की सुध लेना भी तू भूल गया। जिन गौओं को तू बड़े प्रेम से चराया करता था आज तेरी उन्हीं गौओं के जीवन पर भारी सङ्कट है सूर्योदय से पूर्व सहस्रों गौओं के गले पर आरा फेर दिया जाता है। तेरे प्यारे बछड़ों की खाल को कुरम बनाने के लिए जो यन्त्रणा दी जाती है, उसे लिखते हुए लेखनी काँपती है और हृदय थर्राता है। गोपाल! इस भीषण गोवध के कारण उस भारत के बालक, जहाँ घी और दूध की नदियाँ बहती थीं, जहाँ पानी के स्थान पर दूध पिलाया जाता था, आज घी और दूध को तरसते हैं। डालडा के प्रयोग से न उनके शरीर का निर्माण होता है और न बुद्धि ही परिपक्व और विकसित होती है। इस प्रकार भगवन् जिधर देखें अन्धकार-ही-अन्धकार दिखाई देता है।

वर्णाश्रम मर्यादा नष्ट हो चुकी है। संसार के त्याग का दम भरनेवाले संन्यासी बड़े-बड़े महल बनाकर उनमें विलासिता का जीवन बिताते हैं। इतना ही नहीं भोली-भाली नारी-जाति को अपने चुङ्गल में फँसाकर दम्भ, पाखण्ड और गुरुडम का प्रचार करते हैं।

भक्तवत्सल! सत्ययुग और त्रेता में जब धर्म अपने चार और तीन पाँवों पर खड़ा था, जब न दम्भ था न

पाखण्ड, ठगी न बेईमानी उस समय आपने अनेक अवतार लिये, परन्तु इस कलियुग में जब धर्म के तीन पाँव टूट चुके हैं, पाप और अधर्म बढ़ता ही जा रहा है, तब आप एक भी अवतार लेने के लिए तैयार नहीं होते। मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है कि आप अपनी प्रतिज्ञा को भूल गये हैं, परन्तु नाथ! यदि आप ही भूलने लगें तो हम संसारी जीवों की क्या गति होगी?

लिखने के लिए बातें तो बहुत हैं, परन्तु उन सब बातों को यहाँ लिखने का अवकाश कहाँ? जितना लिखा है, इससे ही आप और सब-कुछ जान लेंगे, ऐसी पूर्ण आशा है और दृढ़ विश्वास है। हाँ, अन्त में इतना निवेदन अवश्य करना है कि अब आप शीघ्रातिशीघ्र अवतार लें तथा अपने भक्तों के कष्टों को दूर करें।

आपका परम प्रिय

एक भक्त

भगवान् का उत्तर

प्रिय भक्त!

तुम्हारा पत्र आज ही डाक द्वारा प्राप्त हुआ। स्वर्ग-निवासी ऋषि दयानन्द, लोकमान्य पं० बालगङ्गाधर तिलक, श्री मदनमोहन मालवीयजी आदि की उपस्थिति में पत्र पढ़ा। पत्र पढ़कर मैं तो आवाक् रह गया। यह तो ठीक है कि अर्जुन को युद्ध में प्रवृत्त कराने के लिये मैंने गीता का उपदेश दिया था, परन्तु मैंने यह कदापि नहीं कहा कि—"**यदा यदा हि.....**" जब-जब धर्म की हानि होती है, तब-तब मैं अवतार लेता हूँ। यह तो मेरे नाम से किसी वाममार्गी अथवा अवतारवादी ने प्रचलित किया होगा। मैंने कभी भगवान् होने की घोषणा भी नहीं की। तुम्हें भी

तो अपनी बुद्धि से कुछ विचार करना चाहिए था, जो सर्वव्यापक है, प्रत्येक स्थान पर है, वह कहाँ से और किस प्रकार उतर सकता है ? और यदि दुर्जनतोष-न्यायवश इसे ठीक भी मान लिया जाए, तो मैंने यह भी तो कहा था—

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।

—गीता २।४७

तेरा कर्म करने में ही अधिकार है, फल की प्राप्ति में नहीं। तुम कर्म तो करते नहीं हो, स्वयं तो अपनी स्त्रियों के घाघरों में छिपे बैठे हो और मुझे बुलाते हो, क्या खूब! सुन, ओ भक्त! ध्यानपूर्वक सुन, तुममें महान् शक्ति है, तुम संसार में उथल-पुथल मचा सकते हो। ब्लैक मार्किट, घूँसखोरी, अनाचार, अत्याचार, पाखण्ड और दम्भ को दूर करने की तुम में पूर्ण शक्ति और सामर्थ्य है, परन्तु तुम तो हाथ-पर-हाथ रक्खे निठल्ले बैठे हुए मेरे आने की प्रतीक्षा कर रहे हो। मेरे आने की आशा छोड़ दो। लङ्गर-लङ्गोटे कसकर स्वयं खड़े हो जाओ, स्वयं कर्म करो, स्वयं पुरुषार्थ करो, फिर आप समस्त अन्याय और अधर्म को दूर करने में समर्थ होओगे।

तुम स्वयं तो भैंस का दूध पीते हो और मुझसे गोरक्षा की बातें करते हो। तुम स्वयं गोपाल बनो। अपने घर में गौ पालो, गोदुग्ध का पान करो, तब अविलम्ब ही गोरक्षा भी हो जाएगी और वह दिन दूर नहीं जब भारत पुनः संसार का सिरमौर बनेगा।

मुझे मत बुलाओ। यदि मैं सुदर्शनचक्र लेकर आ गया तो समस्त संसार का सफ़ाया हो जाएगा। कारण, मुझे तो सभी अधर्मात्मा और पापी दिखाई दे रहे हैं, अतः मेरे

अवतार लेने की आशा छोड़कर स्वयं उद्योग करो। कर्म करते जाओ उसका फल अवश्य मिलेगा। आपके पुरुषार्थ से जहाँ आपको यश मिलेगा, वहाँ संसार का भी कल्याण होगा, अतः उठो और संसार के कल्याण के लिए कमर कस लो। मेरा यह सन्देश भारत के एक-एक बच्चे को दे दो। मेरा आशीर्वाद आपके साथ है।

आशा है थोड़े में ही सब-कुछ समझ लोगे और स्वयं अपने बाहुबल से नीचे पड़े भारत को ऊँचा उठाने का प्रयत्न शीघ्र ही आरम्भ कर दोगे।

तुम्हारा मङ्गलाभिलाषी

कृष्ण

गीता–उपदेश

भूमिका

"गीयते इति गीता," जो गाई जाए उसे गीता कहते हैं। गीता युद्धगीत (War Song) है। लगभग ५००० वर्ष पूर्व योगिराज श्रीकृष्ण ने अपने प्रिय मित्र अर्जुन को युद्ध में प्रवृत्त कराने के लिए इसे गाया था।

श्रीमद्भगवद्गीता एक पवित्र ग्रन्थरत्न है। भारतवर्ष ही नहीं अपितु संसार इसपर मोहित है। इङ्गलैण्ड, अमेरिका, चीन, जापान, फ्राँस आदि देशों में भी इसकी मान्यता है। संसार की समस्त सभ्य भाषाओं में इसका अनुवाद हो चुका है। अंग्रेजी, जर्मन, फ्रेंच, लैटिन, ग्रीक, स्पेनिश, पार्चुगीज आदि भाषाओं में इसके विविधि अनुवाद हुए हैं। अमेरिका के प्रसिद्ध दार्शनिक स्वर्गीय इमर्सन (Emerson) इसका नित्य पाठ किया करते थे। इङ्गलैण्ड के प्रख्यात लेखक कार्लाइल (Carlyle) अपने ज्ञान-पिपासु मित्रों की शान्ति के लिए उन्हें गीता भेंट किया करते थे।

परन्तु गीतारत्न पर साम्प्रदायिक मल की तह जम गई है। वाममार्गियों ने अपने पक्ष को सत्य सिद्ध करने के लिए वेदों के उल्टे भाष्य किये तथा अन्य ग्रन्थों में मिलावट की। गीतारत्न भी उस मिलावट से अछूता न रह सका। महर्षि व्यास और उनके शिष्यों ने महाभारत के केवल १० हज़ार श्लोक बनाये थे, जिसका नाम था 'जय'। वे महाराज विक्रमादित्य के समय में २० सहस्र और भोज के समय में ३० हज़ार हो गये और अब बढ़ते-बढ़ते एक लाख हो गये हैं। गीता महाभारत के भीष्मपर्व का एक अङ्ग है। जब दस सहस्र श्लोकों का महाभारत आज एक लाख श्लोकों का हो गया है, तो गीता में कितना प्रक्षेप हुआ होगा इसका अनुमान पाठक

गीता में कितना प्रक्षेप हुआ होगा इसका अनुमान पाठक स्वयं लगा सकते हैं। वर्त्तमान गीता में ७०० श्लोक हैं यदि उपर्युक्त अनुपात से देखा जाए तो आरम्भ में, गीता में ७० श्लोक ही रहे होंगे। जावा के निकट बाली द्वीप से ७० श्लोकों की गीता प्राप्त होने से इस बात की और अधिक पुष्टि हो जाती है।

दोनों सेनाएँ युद्ध के लिए तैयार खड़ी हैं, युद्धारम्भ के समय स्वल्पकाल में ७०० श्लोकों का ज्ञान सुनाना असम्भव है, साथ ही यह बात भी विचारणीय है कि गीता का ज्ञान अर्जुन को युद्ध में लगाने के लिए दिया गया था, वहाँ यज्ञ, दान तथा योग आदि की व्याख्या की कोई आवश्यकता नहीं थी। इस दृष्टि से देखा जाए तो योगेश्वर कृष्ण ने अर्जुन का मोह दूर करने के लिए कुछ युक्तियाँ दी होंगी, उन्हीं को महर्षि व्यास ने पद्य में लिख दिया।

कुछ विद्वानों का मत है कि महर्षि व्यास ने योगेश्वर कृष्णजी की समस्त शिक्षाओं को एकत्रित कर दिया है, जो आज गीता के नाम से प्रसिद्ध है, परन्तु कसौटी पर कसने से यह पक्ष भी सत्य सिद्ध नहीं ठहरता, क्योंकि गीता के श्लोक परस्पर विरुद्ध हैं। गीता में कहीं कर्म को श्रेष्ठ बताया गया है तथा ज्ञान का तिरस्कार किया गया है। कहीं भक्ति की प्रशंसा करते हुए ज्ञान और कर्म का तिरस्कार किया गया है। कहीं ज्ञानयोग की श्रेष्ठता बताते हुए भक्ति, कर्म तथा वेदों को छोटा बताया गया है। गीता ३।८[1]; ५।२[2] में कर्म-त्याग से कर्म करना श्रेष्ठ बताया

---

१. नियतं कुरु कर्म त्वं कर्म ज्यायो ह्यकर्मणः।
शरीरयात्रापि च ते न प्रसिद्ध्येदकर्मणः॥

२. संन्यासः कर्मयोगश्च निःश्रेयसकरावुभौ।
तयोस्तु कर्मसंन्यासात्कर्मयोगो विशिष्यते॥

गया है। गीता ५।४, ५ में कहा है—

सांख्ययोगौ पृथग्बालाः प्रवदन्ति न पण्डिताः।
एकं साख्यं च योगं च यः पश्यति स पश्यति॥

सांख्य और योग को बालकगण ही पृथक् कहते हैं, विद्वान् नहीं, जो सांख्य और योग को एक देखता है, वही ठीक-ठीक देखता है।

कदाचित् ये तथा ऐसे ही अनेक परस्पर विरुद्ध स्थलों को देखकर महर्षि दयानन्द सरस्वती भगवद्गीता को त्रिदोष का सन्निपात बतलाते थे और कहते थे कि उसमें कहीं तो जीव-ब्रह्म का एकत्व प्रतिपादित किया गया है और कहीं उनका पृथक्त्व देखने में आता है और कहीं प्रकृति और पुरुष का पृथक्त्व माना गया है।

—महर्षि दयानन्द सरस्वती का जीवन, पृष्ठ २०४

इस सम्बन्ध में महर्षि दयानन्द के जीवन की एक घटना का वर्णन करना भी अप्रासङ्गिक न होगा। पं० भूमित्रजी शर्मा के शब्दों में घटना इस प्रकार है, ''संवत् १९२४ में जबकि स्वामी महर्षि दयानन्द सरस्वतीजी ने कर्णवास में वैदिक धर्म का उपदेश किया था तदनुसार वहाँ के बड़े-बड़े रियासतवाले क्षत्रियों ने महर्षि के उपदेश को सादर ग्रहण कर यज्ञोपवीत कराये और सन्ध्या-अग्निहोत्र के मन्त्रों का अध्ययन किया। उसी अवसर पर मेरा भी उपनयन-संस्कार हुआ था। मैं नित्य स्वामीजी की सेवा में गङ्गातीर पक्के घाट पर जाकर सन्ध्या पढ़ा करता था। एक दिन मध्याह्नोत्तर ४ बजे स्वामीजी के पास सब क्षत्रिय आदि श्रोता बैठे हुए थे, उसी समय ठा० गोपालसिंहजी के कारिन्दा लाला केसरीलाल कायस्थ ने प्रश्न किया कि महाराज मैं गीता का पाठ किया करता हूँ, यह कैसी है? तब स्वामीजी ने उत्तर दिया कि साम्प्रदायी लोगों ने बहुत

श्लोक मिला दिये हैं। इसमें ७,९,१०,११,१२ अध्याय तो समग्र प्रक्षिप्त हैं और अन्य अध्यायों में, किसी में दो, किसी में दस, किसी में पाँच श्लोक अवतारवाद के प्रक्षिप्त हैं, उनको छोड़कर शेष गीता शुद्ध है।''

—श्रीमद्भगवद्गीता, ले० भूमित्रशर्मा, पृष्ठ १

महर्षि दयानन्द के इतने स्पष्ट वचनों के होते हुए भी जो यह कहते हैं कि स्वामीजी सारी गीता को शुद्ध मानते थे, उनकी बुद्धि को क्या कहा जाए?

जैसाकि आरम्भ में लिखा जा चुका है, गीता युद्धगीत है, यह उपदेश अर्जुन को युद्ध में प्रवृत्त कराने के लिए दिया गया था, अतः वहाँ यज्ञ, दान, योग, भक्ति आदि की व्याख्या की कोई आवश्यकता प्रतीत नहीं होती, इसलिए इस गीता-उपदेश में केवल ७० श्लोक रक्खे गये हैं।

गीता का उपदेश है आत्मा अमर है। कर्म करो, परन्तु उसके फल की आकांक्षा मत करो। कायरता को त्यागकर अर्जुन की भाँति विजेता बनो।

वेद-सदन **—जगदीशचन्द्र विद्यार्थी**
८ ई, कमलानगर, दिल्ली
२ दिसम्बर १९५९

गीता-उपदेश

धृतराष्ट्र उवाच

धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे समवेता युयुत्सवः।
मामकाः पाण्डवाश्चैव किमकुर्वत सञ्जय॥ १॥

धृतराष्ट्र ने पूछा—हे (**सञ्जय**) संजय! (**धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे**) पुण्यभूमि कुरुक्षेत्र में (**समवेताः युयुत्सवः**) युद्ध की इच्छा से इकट्ठे हुए (**मामकाः च एव पाण्डवाः**) मेरे और पाण्डु के पुत्रों ने (**किम् अकुर्वत**) क्या किया।

सञ्जय उवाच

दृष्ट्वा तु पाण्डवानीकं व्यूढं दुर्योधनस्तदा।
आचार्यमुपसंगम्य राजा वचनमब्रवीत्॥ २॥

संजय ने कहा—(**राजा**) दुर्योधन (**तदा व्यूढं पाण्डव-अनीकम्**) उस समय व्यूहाकार पाण्डव सेना को (**दृष्ट्वा**) देखकर (**आचार्य उपसंगम्य**) आचार्य के पास जाकर (**वचनम् अब्रवीत्**) यह वचन कहने लगा।

पश्यैतां पाण्डुपुत्राणामाचार्य महतीं चमूम्।
व्यूढां द्रुपदपुत्रेण तव शिष्येण धीमता॥ ३॥

हे आचार्य! (**धीमता**) बुद्धिमान् (**तव शिष्येण**) आपके शिष्य (**द्रुपदपुत्रेण**) द्रुपद के पुत्र-धृष्टद्युम्न द्वारा (**व्यूढाम्**) व्यूहाकार खड़ी की हुई (**पाण्डुपुत्राणाम्**) पाण्डु-पुत्रों की (**एताम्**) इस (**महतीम् चमूम्**) बड़ी भारी सेना को (**पश्य**) देखिए।

अत्र शूरा महेष्वासा भीमार्जुनसमा युधि।
युयुधानो विराटश्च द्रुपदश्च महारथः॥ ४॥

(**अत्र युधि**) इस संग्राम में (**भीम-अर्जुन-समाः**)

भीम और अर्जुन-जैसे (**महा इष्वासाः**) बड़े-बड़े धनुर्धर (**युयुधानः च विराटः**) युयुधान और विराट (**च महारथः द्रुपदः**) और महारथी राजा द्रुपद,

धृष्टकेतुश्चेकितानः काशिराजश्च वीर्यवान्।
पुरुजित् कुन्तिभोजश्च शैव्यश्च नर पुङ्गवः॥ ५॥

(**धृष्टकेतुः चेकितानः**) धृष्टकेतु, चेकितान (**वीर्यवान् काशिराजः**) बलवान् काशी का राजा (**पुरुजित् कुन्तिभोजः**) पुरुजित् कुन्तिभोज[1] (**च नरपुंगवः शैव्यः**) और नरश्रेष्ठ शिविदेश का राजा,

युधामन्युश्च विक्रान्त उत्तमौजाश्च वीर्यवान्।
सौभद्रो द्रौपदेयाश्च सर्व एव महारथाः॥ ६॥

(**विक्रान्तः युधामन्युः**) पराक्रमी युधामन्यु (**वीर्यवान् उत्तमौजाः**) शक्तिशाली उत्तमौजा (**सौभद्रः**) सुभद्रा का

---

१. पुरुजित् कुन्तिभोज एक व्यक्ति है। यहाँ प्रायः गीता की टीका करनेवालों ने भूल की है। टीकाकारों ने पुरुजित् और कुन्तिभोज को दो व्यक्ति माना है। महाभारतकार व्यासजी के अनुसार यह एक ही व्यक्ति है। इस विषय में अकाट्य प्रमाण प्रस्तुत है—

उद्योगपर्व में भीष्मपितामह पाण्डव-पक्ष के रथी, अतिरथी आदि का परिचय देते हुए कह रहे हैं—

पुरुजित् कुन्तिभोजश्च महेष्वासो महाबलः।
मातुलो भीमसेनस्य स च मेऽतिरथो मतः॥

—उद्योगपर्व १७२।२

कुन्तिभोजकुमार राजा पुरुजित् जो भीमसेन के मामा हैं, वे भी महाधनुर्धर तथा अतिबलवान् हैं। मैं इन्हें भी अतिरथी मानता हूँ।

यहाँ महेष्वासः, महाबलः, मातुलः, अतिरथः—ये सारे विशेषण पुरुजित् कुन्तिभोज को एक व्यक्ति सिद्ध कर रहे हैं।

पुत्र=अभिमन्यु (**च द्रौपदेयाः**) और द्रौपदी के पाँच पुत्र-ये (**सर्वे एव**) सब ही (**महारथाः**) महारथी हैं।

अस्माकं तु विशिष्टा ये तान्निबोध द्विजोत्तम।
नायका मम सैन्यस्य संज्ञार्थं तान्ब्रवीमि ते॥ ७॥

(**द्विजोत्तम**) हे ब्राह्मणश्रेष्ठ! (**ये तु अस्माकं विशिष्टाः**) जो हमारे विशेष पुरुष हैं (**तान् निबोध**) उनको भी सुनो, (**तान् ते संज्ञार्थम् ब्रवीमि**) उन्हें आपके परिज्ञान के लिए कहता हूँ।

भवान्भीष्मश्च कर्णश्च कृपश्च समितिञ्जयः।
अश्वत्थामा विकर्णश्च सौमदत्तिस्तथैव च॥ ८॥

(**भवान् च भीष्मः**) आप और भीष्म (**कर्णः च समितिञ्जयः कृपः**) कर्ण और संग्राम विजेता कृपाचार्य (**अश्वत्थामा च विकर्णः**) अश्वत्थामा और विकर्ण (**च तथा एव**) और वैसे ही (**सौमदत्तिः**) सोमदत्त का पुत्र=भूरिश्रवा।

अन्ये च बहवः शूरा मदर्थे त्यक्तजीविताः।
नानाशस्त्रप्रहरणाः सर्वे युद्धविशारदाः॥ ९॥

तथा (**मत् अर्थे**) मेरे लिए (**त्यक्तजीविताः**) प्राण त्यागनेवाले (**अन्ये च बहवः शूराः**) और भी बहुत-से वीर हैं, जो (**नानाशास्त्रप्रहरणाः**) अनेक प्रकार के शस्त्रों से युक्त तथा (**सर्वे युद्धविशारदाः**) सबके सब युद्ध में निपुण हैं।

अपर्याप्तं तदस्माकं बलं भीष्माभिरक्षितम्।
पर्याप्तं त्विदमेतेषां बलं भीमाभिरक्षितम्॥ १०॥

(**तत् अस्माकम् भीष्म+अभिः रक्षितम् बलम्**) वह हमारी भीष्म द्वारा रक्षित सेना (**अपर्याप्तं**) असंख्य हैं और

(**एतेषाम् भीमः अभिरक्षितम् बलम् तु**) इनकी भीम द्वारा रक्षित सेना तो (**पर्याप्तम्**) परिमित है, थोड़ी-सी है।

अयनेषु च सर्वेषु यथाभागमवस्थिताः।
भीष्ममेवाभि रक्षन्तु भवन्तः सर्व एव हि॥ ११॥

(**हि**) इसलिए (**सर्वेषु अयनेषु**) सब मोर्चों पर (**यथा-भागम्**) अपने-अपने स्थान पर (**अवस्थिताः**) खड़े हुए (**भवन्तः सर्वे एव**) आप सब ही (**भीष्मम् एव अभिरक्षन्तु**) भीष्म की ही सब ओर से रक्षा करें।

अथ व्यवस्थितान्दृष्ट्वा धार्तराष्ट्रान्कपिध्वजः।
प्रवृते शस्त्रसम्पाते धनुरुद्यम्य पाण्डवः॥ १२॥
हृषीकेशं तदा वाक्यमिदमाह महीपते।

अर्जुन उवाच

सेनयोरुभयोर्मध्ये रथं स्थापय मेऽच्युत॥ १३॥

(**महीपते**) हे पृथिवीपते! (**अथ कपिध्वजः**) इसके उपरान्त वानर की ध्वजावाला अर्जुन (**धार्तराष्ट्रान् व्यवस्थितान् दृष्ट्वा**) धृतराष्ट्र के पुत्रों को नियम में खड़े देखकर (**शस्त्रसम्पाते प्रवृत्ते**) शस्त्रों का चलना आरम्भ होने के समय (**धनुः उद्यम्य**) धनुष उठाकर (**पाण्डवः**) पाण्डुपुत्र अर्जुन (**हृषीकेशम् इदम् वाक्यम् आह**) श्रीकृष्ण को यह वाक्य कहने लगा।

अर्जुन बोला—(**अच्युत**) हे निश्चल कृष्ण! (**उभयोः सेनयोः मध्ये**) दोनों सेनाओं के बीच में (**मे रथम् स्थापय**) मेरे रथ को खड़ा करो।

यावदेतान्निरीक्षेऽहं योद्धुकामानवस्थितान्।
कैर्मया सह योद्धव्यमस्मिन्रणसमुद्यमे॥ १४॥

(**यावत्**) जिससे कि (**योद्धुकामान् एतान् अवस्थितान्**) युद्ध की कामना से खड़े हुओं को (**अहम् निरीक्षे**) मैं देखूँ कि (**अस्मिन् रणसमुद्यमे**) इस युद्ध के उद्योग में (**मया कैः सह योद्धव्यम्**) मुझे किनके साथ लड़ना है।

सञ्जय उवाच

एवमुक्तो हृषीकेशो गुडाकेशेन भारत।

सनयोरूभयोर्मध्ये स्थापयित्वा रथोत्तमम्॥ १५॥

संजय ने कहा—(**भारत**) हे धृतराष्ट्र! (**हृषीक-ईशः**) इन्द्रियों के स्वामी=श्रीकृष्ण (**गुडाका+ईशेन**) निद्रा के विजेता=अर्जुन के (**एवम् उक्तः**) इस प्रकार कहने पर (**उभयोः सेनयोः मध्ये**) दोनों सेनाओं के बीच में (**रथ+उत्तमम्**) श्रेष्ठ रथ को (**स्थापयित्वा**) खड़ा करके

भीष्मद्रोणप्रमुखतः सर्वेषां च महीक्षिताम्।

उवाच पार्थ पश्यैतान्समवेतान्कुरूनिति॥ १६॥

(**भीष्म+द्रोण+प्रमुखतः**) भीष्म और द्रोण के सामने (**च सर्वेषाम् महीक्षिताम्**) और सब राजाओं के सामने (**उवाच**) कहने लगे (**पार्थ**) हे पृथापुत्र! (**एतान् समवेतान् कुरून्**) इन इकट्ठे हुए कुरुओं को (**पश्य**) देखो।

तत्रापश्यत्स्थितान्पार्थः पितृनथ पितामहान्।

आचार्यान्मातुलान्भ्रातृन् पुत्रान्पौत्रान्सखींस्तथा॥ १७॥

श्वशुरान्सुहृदश्चैव सेनयोरुभयोरपि।

तान्समीक्ष्य स कौन्तेयः सर्वान्बन्धूनवस्थितान्॥ १८॥

(**तत्र**) वहाँ (**पार्थः**) अर्जुन ने (**पितृन् अथ पितामहान्**) पिताओं और दादाओं (**आचार्यान् मातुलान् भ्रातृन् पुत्रान् पौत्रान् तथा सखीन्**) आचार्यों, मामाओं, भाइयों, पुत्रों, पोतों तथा साथियों (**श्वशुरान्, च एव सुहृदः**) श्वसुरों और मित्रों को (**उभयोः अपि सेनयोः**) दोनों ही सेनाओं में (**स्थितान् अपश्यत्**) खड़े हुए देखा। (**सः कौन्तयः**) वह कुन्तीपुत्र (**तान् सर्वान् अवस्थितान् बन्धून् समीक्ष्य**) उन सब खड़े हुए परिवार के लोगों को देखकर

कृपया परयाविष्टो विषीदन्निदमब्रवीत्।

अर्जुन उवाच

दृष्ट्वेमं स्वजनं कृष्ण युयुत्सुं समुपस्थितम्॥ १९॥

(**परया कृपया**) अत्यन्त कृपा से (**आविष्टः**) पूर्ण हुआ (**विषीदन् इदम् अब्रवीत्**) दुःखी होता हुआ बोला—

अर्जुन ने कहा—(**कृष्ण**) हे कृष्ण! (**युयुत्सुम्**) युद्ध की इच्छावाले (**इमम्**) इस (**समुपस्थितम्**) आये हुए (**स्वजनम्**) अपने बन्धुवर्ग को (**दृष्ट्वा**) देखकर

सीदन्ति मम गात्राणि मुखं च परिशुष्यति।

वेपथुश्च शरीरे मे रोमहर्षश्च जायते॥ २०॥

(**मम गात्राणि सीदन्ति**) मेरे अङ्ग शिथिल हो रहे हैं (**च मुखम् परिशुष्यति**) और मुँह सूख रहा है (**च मे शरीरे**) और मेरे शरीर में (**वेपथुः च रोमहर्षः**) कम्प तथा रोमाञ्च (**जायते**) हो रहा है।

गाण्डीवं स्त्रंसते हस्तात् त्वक्चैव परिदह्यते।

न च शक्नोम्यवस्थातुं भ्रमतीव च मे मनः॥ २१॥

(**हस्तात् गाण्डीवम् स्त्रंसते**) हाथ से गाण्डीव धनुष गिर रहा है (**च एव त्वक् परिदह्यते**) और त्वचा जल रही है (**च अवस्थातुम् न शक्नोमि**) खड़ा होने के लिए

समर्थ नहीं हूँ (च मे मनः भ्रमती इव) और मेरा मन घूम-सा रहा है।

निमित्तानि च पश्यामि विपरीतानि केशव।
न च श्रेयोऽनुपश्यामि हत्वा स्वजनमाहवे॥ ३१॥

(**च केशव**) और हे कृष्ण! (**निमित्तानि विपरीतानि पश्यामि**) मैं उलटे लक्षण देख रहा हूँ, (**च आहवे स्वजनम् हत्वा**) और संग्राम में अपने बन्धुओं को मारकर (**श्रेयः न अनुपश्यामि**) कल्याण नहीं देखता।

न काङ्क्षे विजयं कृष्ण न च राज्यं सुखानि च।
किं नो राज्येन गोविन्द किं भोगैर्जीवितेन वा॥ ३२॥

(**कृष्ण**) हे कृष्ण! (**विजयम् राज्यम् च सुखानि न काङ्क्षे**) मैं जय, राज्य और सुख नहीं चाहता। (**गोविन्द**) हे गोविन्द! (**नः राज्येन भोगैः वा जीवितेन किम्**) हमें राज्य की प्राप्ति से, भोगों से या जीवन से भी क्या लाभ?

येषामर्थे कांक्षितं नो राज्यं भोगाः सुखानि च।
त इमेऽवस्थिता युद्धे प्राणांस्त्यक्त्वा धनानि च॥ ३३॥

(**नः**) हमें (**येषाम् अर्थे**) जिनके लिए (**राज्यम् भोगाः च सुखानि कांक्षितम्**) राज्य, भोग और सुख चाहिए (**ते इमे**) वे ही ये सब लोग (**प्राणान् च धनानि त्यक्त्वा**) धन और जीवन की आशा को त्यागकर (**युद्धे अवस्थिताः**) संग्राम में खड़े हैं।

एतान्न हन्तुमिच्छामि घ्नतोऽपि मधुसूदन।
अपि त्रैलोक्यराज्यस्य हेतोः किं नु महीकृते॥ ३५॥

(**मधुसूदन**) मधुनामक दैत्य को मारनेवाले हे श्रीकृष्ण! (**एतान् घ्नतः अपि**) इन्हें [हमें] मारते हुओं को भी (**त्रैलोक्य+राजस्य हेतोः अपि**) तीनों लोकों के राज्य के लिए भी (**न हन्तुम् इच्छामि**) नहीं मारना चाहता (**महीकृते नु किम्**) पृथिवी के राज्य के लिए तो कहना ही क्या!

अहो बत महत्पापं कर्तुं व्यवसिता वयम्।
यद्राज्यसुखलोभेन हन्तुं स्वजनमुद्यताः॥ ४५॥

(**अहो**) अहो! (**बत**) शोक है (**वयम् महत् पापम्**) हम लोग बहुत बड़ा पाप (**कर्तुम् व्यवसिताः**) करने लगे हैं (**यत् राज्य+सुख+लोभेन**) जोकि राज्य और सुख के लोभ से (**स्वजनम् हन्तुम् उद्यताः**) अपने कुलवालों को मारने के लिए उद्यत हुए हैं।

यदि मामप्रतीकारमशस्त्रं शस्त्रपाणयः।
धार्तराष्ट्रा रणे हन्युस्तन्मे क्षेमतरं भवेत्॥ ४६॥

यदि (**शस्त्रपाणयः**) शस्त्र हाथ में लिये (**धार्तराष्ट्राः**) धृतराष्ट्र के पुत्र (**माम् अप्रतीकारम् अशस्त्रम्**) मुझ प्रतीकार न करते हुए शस्त्ररहित को (**रणे हन्युः**) रण में मार दें (**तत् मे**) तो मेरा (**क्षेमतरम् भवेत्**) परम कल्याण हो।

सञ्जय उवाच

एवमुक्त्वार्जुनः संख्ये रथोपस्थ उपाविशत्।
विसृज्य सशरं चापं शोकसंविग्नमानसः॥ ४७॥

संजय ने कहा कि (**शोक+संविग्न+मानसः**) शोक से खिन्नचित्तवाला (**अर्जुनः**) अर्जुन (**एवम् उक्त्वा**) ऐसा कहकर (**सशरम् चापम् विसृज्य**) बाणसहित धनुष को छोड़कर (**रथ उपस्थे**) रथ के जुए पर[1] (**उप**

---

१. उपस्थ का अर्थ है रथ का जुआ। हमारा विचार है कि योद्धा रथ के जुए पर बैठकर युद्ध करता था, पिछले भाग में बैठकर नहीं। सारथि पीछे बैठकर अथवा खड़ा होकर रथ चलाता था। शत्रुपक्ष के योद्धा सारथि को भी मारते थे, अतः सारथि पीछे होता था।

आविशत्) बैठ गया।

तं तथा कृपयाविष्टमश्रुपूर्णाकुलेक्षणम्।
विषीदन्तमिदं वाक्यमुवाच मधुसूदनः॥ २९॥

(**तथा कृपया आविष्टम्**) उस प्रकार करुणा से पूर्ण (**अश्रुपूर्ण+आकुल+ईक्षणम्**) आँसुओं से भरे व्याकुल नेत्रोंवाले (**विषीदन्तम् तम्**) उदास हुए अर्जुन को (**मधुसूदनः**) मधुनामक दैत्य को मारनेवाले श्रीकृष्ण (**इदम् वाक्यम् उवाच**) यह वचन कहने लगे।

श्रीकृष्ण उवाच

कुतस्त्वा कश्मलमिदं विषमे समुपस्थितम्।
अनार्यजुष्टमस्वर्ग्यमकीर्तिकरमर्जुन॥ ३०॥

श्रीकृष्ण बोले—हे अर्जुन! (**त्वा विषमे**) तुझको इस विषम स्थल में, युद्ध के अवसर पर (**इदम् अनार्य-जुष्टम्**) यह अनार्यों का प्रिय (**अस्वर्ग्यम्**) सुख को न देनेवाला (**अकीर्तिकरम् कश्मलम्**) अपयश का देनेवाला मोह (**कुतः समुपस्थितम्**) कहाँ से आ गया?

क्लैब्यं मा स्म गमः पार्थ नैतत्त्वय्युपपद्यते।
क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परन्तप॥ ३१॥

(**पार्थ**) हे अर्जुन! (**क्लैब्यं मा स्म गमः**) नपुंसकता को प्राप्त मत हो, हिजड़ा मत बन (**एतत् त्वयि उपपद्यते न**) यह तेरे योग्य नहीं है, तुझे शोभा नहीं देता। (**परन्तप**) हे शत्रुओं को तपानेवाले! (**क्षुद्रम् हृदय+ दौर्बल्यम्**) हृदय की तुच्छ दुर्बलता को (**त्यक्त्वा उत्तिष्ठ**) छोड़कर युद्ध के लिए खड़ा हो।

अर्जुन उवाच

कथं भीष्ममहं संख्ये द्रोणं च मधुसूदन।
इषुभिः प्रति योत्स्यामि पूजार्हावरिसूदन॥ ३२॥

अर्जुन बोला—(**अरिसूदन, मधुसूदन**) हे शत्रुनाशक एवं मधु-नामक दैत्य के नाशक कृष्ण! (**अहम् संख्ये**) मैं संग्राम में (**पूजा+अर्हौ**) पूजा के योग्य (**भीष्मम् च द्रोणम्**) भीष्म और द्रोण के साथ (**इषुभिः कथम् प्रतियोत्स्यामि**) बाणों से कैसे लड़ूँगा।

गुरूनहत्वा हि महानुभावान्
श्रेयो भोक्तुं भैक्ष्यमपीह लोके।
हत्वार्थकामाँस्तु गुरूनिहैव
भुञ्जीय भोगान्रुधिरप्रदिग्धान्॥ ३३॥

(**हि महानुभावान् गुरून् अहत्वा**) क्योंकि महाशय गुरुओं को न मारकर (**इह लोके भैक्ष्यम् अपि भोक्तुम् श्रेयः**) इस संसार में भिक्षा का अन्न खा लेना भी अच्छा है। (**अर्थ+कामान् गुरून् हत्वा तु**) धन की कामना से युक्त गुरुओं को मारकर तो (**इह एव रुधिर+प्रदिग्धान् भोगान् भुंजीय**) यहाँ ही खून से भरे हुए भोगों को खाएँगे।

न चैतद्विद्मः कतरन्नो गरीयो
यद्वा जयेम यदि वा नो जयेयुः।
यानेव हत्वा न जिजीविषाम-
स्तेऽवस्थिताः प्रमुखे धार्तराष्ट्राः॥ ३४॥

हम लोग यह भी नहीं जानते (**कतरत् नः गरीयः**) हमारे लिए क्या श्रेष्ठ है? (**एतत् न च विद्मः**) हम यह भी नहीं जानते (**यद्वा जयेम**) हम जीतेंगे (**यदि वा नः**

जयेयुः) या हमें वे जीतेंगे और **(यान् हत्वा न एव जिजीविषामः)** जिन्हें मारकर हम जीना भी नहीं चाहते **(ते धार्तराष्ट्राः)** वे धृतराष्ट्र के पुत्र **(सम्मुखे अवस्थिताः)** सामने खड़े हुए हैं।

कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः

पृच्छामि त्वां धर्मसंमूढचेताः।

यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे

शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्॥ ३५॥

(कार्पन्य+दोष+अपहतस्वभावः) कायरता के दोष से दबे हुए 'क्षात्र' स्वभाववाला **(धर्म+सम्मूढ+चेताः)** कर्त्तव्य और अकर्त्तव्य के विषय में भ्रान्त चित्तवाला **(त्वां प्रच्छामि)** मैं तुमसे पूछता हूँ **(यत् निश्चितम् श्रेयः स्यात्)** जो निश्चित् किया हुआ श्रेष्ठ मार्ग हो **(तत् मे ब्रूहि)** वह मुझे बताओ। **(अहम् ते शिष्यः)** मैं आपका शिष्य हूँ **(माम् त्वाम् प्रपन्नम् शाधि)** आपकी शरण में आये हुए मुझको उपदेश दीजिए।

सञ्जय उवाच

एवमुक्त्वा हृषीकेशं गुडाकेशः परन्तपः।

न योत्स्य इति गोविन्दमुक्त्वा तूष्णीं बभूव ह॥ ३६॥

सञ्जय बोला—(परन्तपः गुडाकेशः) शत्रुओं को तपानेवाला और निद्रा को जीतनेवाला अर्जुन **(हृषीक+ईशम् गोविन्दम्)** इन्द्रियों के स्वामी कृष्ण को **(न योत्स्ये)** नहीं लड़ूँगा **(एवं उक्त्वा)** ऐसा कहकर **(तूष्णीम् बभूव ह)** चुप हो गया।

तमुवाच हृषीकेशः प्रहसन्निव भारत।

सेनयोरुभयोर्मध्ये विषीदन्तमिदं वचः॥ ३७॥

(भारत) हे धृतराष्ट्र! **(हृषीकेशः)** कृष्ण **(प्रहसन् इव)** मुस्कराते हुए **(उभयोः सेनयोः मध्ये विषीदन्तम्)** दोनों सेनाओं के बीच में शोकयुक्त **(तम्)** उस अर्जुन को **(उवाच)** कहने लगे।

श्रीकृष्ण उवाच

अशोच्यानन्वशोचस्त्वं प्रज्ञावादाँश्च भाषसे।

गतासूनगतासूँश्च नानुशोचन्ति पण्डिताः॥ ३८॥

श्रीकृष्ण बोले—(त्वम् अशोच्यान् अनु अशोचः) तू जो शोक करने योग्य नहीं, उनके लिए शोक करता है **(च प्रज्ञावादान् भाषसे)** और पण्डितों के-से वचन बोलता है **(पण्डिताः गत+असून् च अगत+असून्)** विद्वान् लोग जिनके प्राण चले गये हैं और जिनके प्राण नहीं गये हैं, उनके लिए **(न अनुशोचन्ति)** शोक नहीं करते।

न त्वेवाहं जातु नासं न त्वं नेमे जनाधिपाः।

न चैव न भविष्यामः सर्वे वयमतः परम्॥ ३९॥

(न तु एव अहम् जातु न आसम्) न तो ऐसा है कि मैं किसी काल में नहीं था और **(न त्वम् न इमे जनाधिपाः)** न यह कि तू या ये राजा लोग कभी नहीं थे। **(वयम् सर्वे अतः परम न भविष्यामः इति न एव)** हम सब इसके पश्चात् नहीं होंगे, ऐसी बात भी नहीं है।

देहिनोऽस्मिन्यथा देहे कौमारं यौवनं जरा।

तथा देहान्तरप्राप्तिर्धीरस्तत्र न मुह्यति॥ ४०॥

(देहिनः अस्मिन् देहे) आत्मा के इस शरीर में **(यथा कौमारम्, यौवनम् जरा)** जैसे कुमार, युवा और वृद्धावस्था होती है **(तथा देहान्तर+प्राप्तिः)** उसी प्रकार अन्य देह की प्राप्ति होती है। **(तत्र)** इस विषय में **(धीरः**

न मुह्यति) बुद्धिमान् मोह नहीं करता।

मात्रास्पर्शास्तु कौन्तेय शीतोष्णसुखदुःखदाः।
आगमापायिनोऽ नित्यास्ताँस्तितिक्षस्व भारत॥ ४१॥

(कौन्तेय) हे कुन्तीपुत्र! **(शीत+उष्ण+सुख+दुःखदाः)** सर्दी-गर्मी, सुख-दुःख देनेवाले **(मात्रा+स्पर्शाः तु)** तत्त्वों के सम्बन्ध तो **(आगम+आपायिनः)** आने-जानेवाले हैं—क्षणभङ्गुर हैं। **(भारत)** हे अर्जुन! **(तान् तितिक्षस्व)** उनको सहन कर।

यं हि न व्यथयन्त्येते पुरुषं पुरुषर्षभ।
समदुःखसुखं धीरं सोऽ मृतत्वाय कल्पते॥ ४२॥

(पुरुष+ऋषभ) हे पुरुषश्रेष्ठ! **(ऐते)** ये **(सम+दुःख-सुखम्)** दुःख और सुख में समान **(यं धीरं पुरुषम्)** जिस बुद्धिमान् पुरुष को **(न व्यथयन्ति)** कष्ट नहीं देते **(सः अमृतत्वाय कल्पते)** वह मोक्ष के लिए योग्य—मोक्ष-प्राप्त करने में समर्थ होता है।

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः।
उभयोरपि दृष्टोऽ न्तस्त्वनयोस्तत्त्वदर्शिभिः॥ ४३॥

(असतः) जो नहीं है, उसकी **(भावः)** उत्पत्ति **(न विद्यते)** नहीं होती **(सतः)** जो हैं उसका **(अभावः)** नाश नहीं होता **(तत्त्वदर्शिभिः)** तत्त्वज्ञानियों ने **(अनयोः उभयोः अपि)** इन दोनों का ही **(अन्तः दृष्टः)** तत्व देखा है।

अविनाशि तु तद्विद्धि येन सर्वमिदं ततम्।
विनाशमव्ययस्यास्य न कश्चित्कर्तुमर्हति॥ ४४॥

(येन) जिसने **(इदं सर्वम् ततम्)** यह सब विस्तार किया है **(तम् तु अवनाशि विद्धि)** उसे तू नाशरहित

जान। **(अस्य अव्यस्य विनाशम्)** इस अविनाशी का नाश **(कश्चित् न कर्तुम् अर्हति)** कोई नहीं कर सकता।

अन्तवन्त इमे देहा नित्यस्योक्ताः शरीरिणः।
अनाशिनोऽ प्रमेयस्य तस्माद्युध्यस्व भारत॥ ४५॥

(अनाशिनः) नष्ट न होनेवाले **(अप्रमेयस्य)** इन्द्रियों के ज्ञान से दूर **(नित्यस्य)** नित्य **(शरीरिणः)** आत्मा के **(इमे देहाः)** ये शरीर **(अन्तवन्तः)** नाशवान् **(उक्ताः)** कहे गये हैं, **(तस्मात्)** इसलिए **(भारत)** हे अर्जुन! **(युध्यस्व)** तू युद्ध कर।

न जायते म्रियते वा कदाचि-
न्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः।
अजो नित्यः शाश्वतोऽ यं पुराणो,
न हन्यते हन्यमाने शरीरे॥ ४६॥

(अयम् कदाचित् न जायते वा न म्रियते) यह आत्मा न कभी जन्म लेता है और न मरता है **(वा न भूत्वा भूयः भविता)** और न होकर अर्थात् पहले नहीं था, फिर होगा ऐसा भी नहीं है। **(अयम् अजः नित्यः शाश्वतः पुराणः)** यह अजन्मा, नित्य, स्थिर और अनादि है। **(शरीरे हन्यमाने न हन्यते)** शरीर के नाश होने पर भी नहीं मरता।

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय,
नवानि गृह्णाति नरोऽ पराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णा-
न्यन्यानि संयाति नवानि देही॥ ४७॥

(यथा नरः जीर्णानि वासांसि विहाय) जैसे मनुष्य पुराने वस्त्रों को त्यागकर **(अपराणि नवानि गृह्णाति)**

दूसरे नये धारण करता है (**तथा देही जीर्णानि शरीराणि विहाय**) वैसे ही जीवात्मा पुराने शरीर को छोड़कर (**अन्यानि नवानि संयाति**) और नयों में प्रवेश करता है।

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न सोषयति मारुतः॥४८॥

(**एनम् शस्त्राणि न छिन्दन्ति**) इसे शस्त्र नहीं काटते (**एनम् पावकः न दहति**) इसे अग्नि नहीं जलाती, (**एनम् आपः न क्लेदयन्ति**) इसे जल नहीं गलाता, (**च मारुतः एनम् न शोषयति**) और वायु इसे नहीं सुखाता, अतः तुझे शोक करने की आवश्यकता नहीं, और यदि तू इसे मरणधर्मा मान ले तो भी चिन्ता की कोई बात नहीं।

जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च।
तस्मादपरिहार्येऽर्थे न त्वं सोचितुमर्हसि॥४९॥

(**हि जातस्य मृत्युः ध्रुवः**) क्योंकि जन्म लेनेवाले की मृत्यु निश्चित है (**च मृतस्य जन्म ध्रुवम्**) और मरे हुए का जन्म निश्चित है। (**तस्मात् अपरिहार्ये अर्थे त्वम् शोचितुम् न अर्हसि**) इसलिए न टलनेवाले विषय में तुझे शोक नहीं करना चाहिए।

देही नित्यमवध्योऽयं देहे सर्वस्य भारत।
तस्मात्सर्वाणि भूतानि न त्वं शोचितुमर्हसि॥५०॥

(**भारत**) हे अर्जुन! (**अयम् देही सर्वस्य देहे नित्यम् अवध्यः**) यह आत्मा सबके शरीर में सदा अमर है (**तस्मात् त्वम् सर्वाणिभूतानि शोचितुम् न अर्हसि**) इसलिए तुझे सब प्राणियों का शोक नहीं करना चाहिए।

स्वधर्ममपि चावेक्ष्य न विकम्पितुमर्हसि।
धर्म्याद्धि युद्धाच्छ्रेयोऽन्यत्क्षत्रियस्य न विद्यते॥५१॥

(**च स्वधर्मम् अपि अवेक्ष्य**) और अपने धर्म को देखकर (**विकम्पितुम् न अर्हसि**) भय नहीं करना चाहिए, (**हि क्षत्रिस्य**) क्योंकि क्षत्रिय के लिए (**धर्म्यात् युद्धात्**) धर्मयुक्त युद्ध से अन्य (**श्रेयः**) श्रेष्ठ कर्म (**न अन्यत्**) (**विद्यते**) नहीं है।

यदृच्छया चोपपन्नं स्वर्गद्वारमपावृतम्।
सुखिनः क्षत्रियाः पार्थ लभन्ते युद्धमीदृशम्॥५२॥

(**पार्थ**) हे पार्थ! (**यदृच्छया उपपन्नम्**) अपने आप ही प्राप्त हुए और (**अपावृतम् स्वर्गद्वारम्**) खुले हुए स्वर्ग के द्वाररूप (**ईदृशम् युद्धम्**) इस प्रकार के युद्ध को (**सुखिनः पार्थिवाः**) सौभाग्यवाले राजा (**लभन्ते**) पाते हैं।

अथ चेत्त्वमिमं धर्म्यं संग्रामं न करिष्यसि।
ततः स्वधर्मं कीर्तिं च हित्वा पापमवाप्स्यसि॥५३॥

(**अथ चेत् त्वम्**) अब यदि तुम (**इमम् धर्म्यम् संग्रामम्**) इस धर्मयुक्त युद्ध को (**न करिष्यसि**) नहीं करेगा (**ततः**) तो (**स्वधर्मम् च कीर्तिम् हित्वा**) अपने धर्म और यश को छोड़कर (**पापम् अवाप्स्यसि**) पाप को प्राप्त होगा।

भयाद्रणादुपरतं मंस्यन्ते त्वां महारथाः।
येषां च त्वं बहुमतो भूत्वा यास्यसि लाघवम्॥५४॥

(**महारथाः त्वाम्**) महारथी तुझे (**रणात् भयात् उपरतम् मंस्यन्ते**) भय से युद्ध से हटा हुआ मानेंगे (**च त्वम् येषाम् बहुमतः**) और जिनकी दृष्टि में तू बड़ा है (**भूत्वा लाघवम् यास्यसि**) उन्हीं की दृष्टि में तुच्छता को प्राप्त होगा।

हतो वा प्रापस्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम्।
तस्मादुत्तिष्ठ कौन्तेय युद्धाय कृतनिश्चयः ॥५५॥

(**वा हतः स्वर्गम् प्राप्स्यसि**) यदि मर गया तो स्वर्ग को प्राप्त होगा। (**वा जित्वा महीम् भोक्ष्यसे**) और यदि जीत गया तो पृथिवी का भोग करेगा, (**तस्मात् कौन्तेय**) इसलिए हे अर्जुन! (**युद्धाय कृत निश्चयः उत्तिष्ठ**) युद्ध के लिए निश्चय करके उठ।

सुखदुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ।
ततो युद्धाय युज्यस्व नैवं पापमवाप्स्यसि॥५६॥

(**सुख+दुखे लाभ+अलाभौ जय+अजयौ समे कृत्वा**) दुःख-सुख, हानि-लाभ तथा जय-पराजय को समान समझकर (**ततः युद्धाय युज्यस्व**) फिर युद्ध के लिए तैयार हो (**एवम् पापम् न अवाप्स्यसि**) इस प्रकार तू पाप का भागी नहीं बनेगा!

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽ स्त्वकर्मणि॥५७॥

(**ते कर्मणि एव अधिकारः**) तेरा कर्म करने में ही अधिकार है, (**फलेषु कदाचन न**) फल में कभी भी नहीं, अतः (**कर्म+फल+हेतु मा भूः**) फल के कारण कर्म मत कर और (**ते सङ्गः अकर्मणि मा अस्तु**) न ही तू कर्मरहित हो।

कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता: जनकादयः।
लोकसंग्रहमेवापि सं पश्यन्कर्तुमर्हसि॥५८॥

(**जनकादयः हि**) जनकादि भी (**कर्मणा एव संसिद्धिम् आस्थिताः**) कर्म से ही सिद्धि को प्राप्त हुए हैं इसलिए (**लोकसंग्रहम्**) लोगों को साथ लेने को

(**सम्पश्यन्**) दृष्टि में रखते हुए भी (**कुर्तुम् अर्हसि**) कर्म करना चाहिए।

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते॥५९॥

(**श्रेष्ठः यत् यत् आचरित**) श्रेष्ठ पुरुष जो-जो आचरण करता है (**इतरः जनः तत् तत् एव**) और लोग भी वैसा ही करते हैं, (**सः यत् प्रमाणम् कुरुते**) वह जो कुछ प्रमाण कर देता है (**लोकः तत् अनुवर्तते**) संसार उसका अनुकरण करता है।

न मे पार्थास्ति कर्तव्यं त्रिषु लोकेषु किंचन।
नानावाप्तमवाप्तव्यं वर्त एव च कर्मणि॥६०॥

(**पार्थ**) हे अर्जुन! (**मे त्रिषु लोकेषु**) मेरा तीनों लोकों में (**किंचन कर्तव्यम्**) कुछ कर्तव्य (**न अस्ति**) नहीं है। (**अनावाप्तम्**) न प्राप्त हुआ (**अवाप्तव्यम्**) प्राप्त करने योग्य भी कुछ नहीं हैं (**च कर्मणि**) फिर भी कर्म में (**वर्ते एव**) लगा हुआ हूँ।

सक्ता कर्मण्यविद्वांसो यथा कुर्वन्ति भारत।
कुर्याद्विद्वांस्तथाऽ सक्तश्चिकीर्षु लोकसंग्रहम्॥६१॥

(**भारत**) हे अर्जुन! (**यथा कर्मणि सक्ताः**) जैसे कर्म में आसक्त हुए (**अविद्वांसः**) अज्ञानी लोग (**कुर्वन्ति**) कर्म करते हैं (**विद्वान्**) ज्ञानी (**तथा असक्तः**) उसी प्रकार अनासक्त होकर (**लोकसंग्रहम् चिकीर्षुः**) लोकसंग्रह की इच्छा से (**कुर्यात्**) कर्म करे।

तस्मादज्ञानसम्भूतं हृत्स्थं ज्ञानासिनात्मनः।
छित्वैनं संशयं योगमातिष्ठोतिष्ठ भारत॥६२॥

(**तस्मात्**) अतः (**अज्ञानसम्भूतम्**) अज्ञान से उत्पन्न

हुए (हृत्स्थम्) हृदय में विद्यमान (आत्मनः) आत्मा के (एनं संशयम्) इस संशय को (ज्ञान+असिना छित्वा) ज्ञान की तलवार से काटकर (योगम् आतिष्ठ) योग का आश्रय लो (उत्तिष्ठ) और युद्ध के लिए उठो।

ऋतेऽपि त्वां न भविष्यन्ति सर्वे
येऽवस्थिताः प्रत्यनीकेषु योधाः।
तस्मात्त्वमुत्तिष्ठ यशो लभस्व
जित्वा शत्रून् भुङ्क्ष्व राज्यं समृद्धम्॥ ६३॥

(**ये प्रत्यनीकेषु अवस्थिताः योधाः**) जो प्रतिपक्षियों की सेना में खड़े हुए योधा लोग हैं (**सर्वे**) ये सब (**ऋते अपि त्वाम्**) तेरे बिना भी (**न भविष्यन्ति**) नहीं रहेंगे, (**तस्मात् त्वम् उत्तिष्ठ**) इसलिए तू उठ और (**शत्रून् जित्वा**) शत्रुओं को जीतकर (**यशः लभस्व**) यश प्राप्त कर तथा (**समृद्धम् राज्यं भुङ्क्ष्व**) धन-धान्य से सम्पन्न राज्य को भोग।

यदहंकारमाश्रित्य न योत्स्य इति मन्यसे।
मिथ्यैष व्यवसायस्ते प्रकृतिस्त्वां नियोक्ष्यति॥ ६४॥

(**यत् अहंकारम् आश्रित्य**) यदि तू अहङ्कार का सहारा लेकर (**न योत्स्ये**) नहीं लड़ूँगा (**इति मन्यसे**) ऐसा मानता है तो (**ते व्यवसायः मिथ्या एव**) तेरा यह व्यापार झूठा है, (**त्वाम् प्रकृतिः नियोक्ष्यति**), क्योंकि क्षत्रियपन का स्वभाव तुझे युद्ध में लगा देगा।

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।
भ्रामयन्सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया॥ ६५॥

क्योंकि हे अर्जुन! (**यन्त्रारूढ़ानि**) नियम-कला पर चढ़े हुए (**सर्वभूतानि**) सम्पूर्ण तत्त्वों को, आकाशादि

सारे भूतों को (**मायया**) अपनी शक्ति से (**भ्रामयन्**) घुमाता हुआ (**ईश्वरः**) भगवान् (**सर्वभूतानाम्**) सब प्राणियों के (**हृत् देशे**) हृदय-स्थान में (**तिष्ठति**) रहता है।

तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत।
तत्प्रसादात्परां शान्तिं स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम्॥ ६६॥

(**भारत**) हे अर्जुन! (**सर्वभावेन**) सब प्रकार से (**तम् एव शरणम् गच्छ**) उसी परमेश्वर की शरण में जा, (**तत् प्रसादत्**) उसी की कृपा से (**पराम् शान्तिम्**) परमशान्ति को (**शाश्वतम् स्थानम्**) परान्तकाल तक नित्य स्थाई मोक्षधाम को (**प्राप्स्यसि**) तू प्राप्त करेगा।

इति ते ज्ञानमाख्यातं गुह्याद्गुह्यतरं मया।
विमृश्यैतदशेषेण यथेच्छसि तथा कुरु॥ ६७॥

(**मया ते**) मैंने तुझे (**इति गुह्यात् गुह्यतरम्**) यह गूढ़-से-गूढ़ (**ज्ञानम्**) ज्ञान (**आख्यातम्**) बतला दिया है, (**एतत् अशेषेण विमृश्य**) इसपर पूर्णरूप से विचार कर (**यथा इच्छसि तथा कुरु**) फिर जैसा चाहता है, वैसा कर।

कच्चिदेतच्छ्रुतं पार्थ त्वयैकाग्रेण चेतसा।
कच्चिदज्ञानसम्मोहः प्रनष्टस्ते धनञ्जय॥ ६८॥

(**पार्थ**) हे अर्जुन! (**कच्चित् त्वया एतत्**) क्या तुमने यह (**एकाग्रेण चेतसा श्रुतम्**) एकाग्रचित्त से सुना। (**धनञ्जय**) हे धन के विजेता! (**कच्चित् ते अज्ञानसम्मोहः प्रनष्टः**) क्या तेरा अज्ञान से उत्पन्न हुआ मोह नष्ट हुआ?

अर्जुन उवाच

नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्ध्वा त्वत्प्रसादान्मयाच्युत।
स्थितोऽस्मि गतसन्देहः करिष्ये वचनं तव॥६१॥

अर्जुन ने कहा—(अच्युत) हे कृष्ण! (त्वत् प्रसादात् मोहः नष्टः) आपकी कृपा से मेरी भ्रान्ति दूर हुई (स्मृतिः लब्धा) अपने धर्म की याद आई (गतसन्देहः स्थितः अस्मि) अब मैं संशयरहित होकर खड़ा हुआ हूँ (तव वचनम् करिष्ये) और आपकी आज्ञा का पालन करूँगा।

सञ्जय उवाच

यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः।
तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम॥७०॥

इसके उपरान्त सञ्जय बोला—(यत्र योगेश्वरः कृष्णः) जहाँ योगेश्वर श्रीकृष्ण है (यत्र धनुर्धरः पार्थः) और जहाँ धनुषधारी अर्जुन है (तत्र श्रीः विजयः भूतिः) वहाँ लक्ष्मी, विजय और ऐश्वर्य है, (मम मतिः ध्रुवा नीतिः) यह मेरा विचार निश्चल नीति है।

इति श्रीमद्भगवद्गीता समाप्ता

भगवान् कृष्ण और उनका गीता-उपदेश

श्रीकृष्ण ऐसे महामानव थे जिनपर कोई भी राष्ट्र और जाति गर्व कर सकती है। इस लघु पुस्तिका में श्रीकृष्ण के उज्ज्वल एवं उदात्तस्वरूप का विवेचन किया गया है। वे चक्रधारी थे, गदाधर तथा असिधर थे, सदाचारी तो वे इतने उच्चकोटि के थे कि एक सन्तान उत्पन्न करने के लिए पति–पत्नि दोनों ने बारह वर्ष के घोर ब्रह्मचर्य–व्रत का पालन किया था। क्या ऐसा व्यक्ति गोपियों के वस्त्रहरण कर सकता है अथवा उनके साथ रास–क्रीड़ा रचा सकता है ? सर्वथा असम्भव।

इस बार उनके गीता–उपदेश को भी इस पुस्तक के साथ समाविष्ट कर दिया है। गीता–उपदेश श्रीकृष्णजी की अमरवाणी है। इसमें आत्मा की अमरता का उपदेश है। "आत्मा अजर और अमर है। तू आत्मा के मरने की चिन्ता मत कर। नपुंसक मत बन। खड़ा हो जा और युद्ध कर। जीतने पर तुझे राज्य की प्राप्ति होगी और मरने पर स्वर्ग की प्राप्ति।"

विजयकुमार गोविन्दराम हासानन्द

Designed by RAVINDRA # 09899223130